CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ज्ञानपीठ पत्रिका

71
V

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सो-५

लेना ....

....

लेनेवालेका	लौटानेकी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ज्ञानपीठ पत्रिका

वर्ष ७ : अंक ३

Dr. G. C. Choudhary.
M.A., Ph.D., Acharya (B.E.S Class I)
Nava Nalanda Mahavihara
Nalanda (Patna)

० ०

१. जैन साहित्य संगोष्ठी २
२. संगोष्ठी : परिकल्पना और प्रतिक्रियाएँ ५
३. विश्वविद्यालयों में जैन वाङ्मय का अध्ययन-अध्यापन १७
४. जैन साहित्य और संस्कृति विषयक शोध-कार्य ३१
५. जैन पत्र-पत्रिकाएँ ३६
६. अन्य भारतीय शोध-पत्रिकाएँ ४६
७. विदेशी पत्रिकाएँ ४७
८. संस्थाएँ और साहित्य ४८
९. प्राचीन पाण्डुलिपियों का सम्पादन .... ११[illegible]
१०. भगवान् महावीर का २५००वाँ निर्वाण महोत्सव १२६
११. सम्मेलन-सेमिनार १२९
१२. जैन-बिबलियोग्राफी १३३
१३. चर्चनीय विषय : सुझाव और सम्मतियाँ १३५
१४. प्राकृत सेमिनार के निष्कर्ष .... १७[illegible]
१५. जैन वाङ्मय के अध्येता और अनुसन्धित्सु .... १९[illegible]
१६. सागर पार के देशों में जैन-अध्ययन .... १[illegible]

14840

० ०

भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन

सम्पादक : लक्ष्मीचन्द्र जैन :: जगदीश

मूल्य : वार्षिक ६.००,००.५५ प्रति
यह अंक ६-००

हि० 629

प्रधान कार्यालय :
९, अलीपुर पार्क प्लेस, कलकत्ता-२७
प्रकाशन कार्यालय :
दुर्गाकुण्ड मार्ग, वाराणसी-५

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जैन साहित्य संगोष्ठी

डॉ० आ० ने० उपाध्ये

The authorities of the Bhāratīya Jñānapīṭha are to be congratulated on their holding this Seminar on Jainology and Jaina Literature at the time of the All-India Oriental Conference held at Varanasi. The Jñānapīṭha is an eminent academic Institution of our country. It has published more than 60 books in Hindi in its Lokodaya Granthamālā and more than 65 works in Sanskrit, Prākrit, Pāli and Tamil. Thus it has made substantial contribution to the progress of Indological studies. Thanks to the foresight of the President, Smt. Rama Jain and the liberal attitude of Shriman Sahu Shanti Prasadaji, the Jñānapīṭha has lately instituted an annual Prize of One Lakh of rupees to the best creative literary work, every year, from any of our fourteen languages. So far three Prizes have been announced. As a prize it has a national significance; and any author would be proud to win it. What I value here is the honest effort on the part of the judges to evolve a common criterion for evaluating creative works in different languages of India. This is a welcome step, perhaps the first of its kind, adopted by a non-government body, to take an integrated view of the fourteen Indian languages and weigh the merit of different works on a uniform basis and with a common standard.

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

A Seminar like this gives an opportunity to scholars working in this neglected branch of Indology to come in closer touch with each other, to discuss the various problems facing them in their academic pursuit and to try to solve them with mutual cooperation.

Jainological studies are a part of Indian learning. This has to be borne in mind by all earnest workers in different branches of Jainology. The term Jaina literature is often repeated in various contexts; but those who use it have, now and then, certain mental reservations : it should mean much more than what is ordinarily intended. The Jaina authors and teachers have substantially enriched the various branches of Indian literature. As M. Winternitz observed (in his History of Indian Literature, Vol. II, Calcutta 1933, pp. 594-5) :

"The Jainas have extended their activities beyond the sphere of their own religious literature to a far greater extent than the Buddhists have done, and they have memorable achivements in the secular sciences to their credit, in philosophy, grammar, lexicography, poetics, mathematics, astronomy and astrology, and even in the science of politics. In one way or the other there is always some connection even of these 'profane' works with religion. In Southern India the Jainas have also rendered services in developing the Dravidian languages, Tamil and Telugu, and especially the Kanarese literary language. They have, besides, written a considerable amount in Gujarāti, Hindī and Mārvārī. Thus we see that they occupy no mean position in the history of Indian literature and Indian thought."

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

This observation comes from one of the greatest historians of Indian literature, and therefore, has a special significance. It is not enough that we confine ourselves only to Sanskrit, Prākrit and Apabhraṁśa; but thier studies have to be linked up, wherever possible, with the contribution of Jaina authors in the South, especially in Tamil and Kannada. This wide perspective will give us an idea how the study of Jaina literature is closely and inseparably interwoven with the study of Indian literature as a whole, through various centuries. Even a comparative study of the tale of Yaśodhara found in various languages of the South and North would be a topic of immense interest and fruitful research. It was surprising to some of my colleagues that the Kannada commentary of Keśava Varṇi on the Gŏmmaṭasāra was rendered into Sanskrit. Ordinarily scholars would have presumed that it is the Sanskrit works that are rendered into Kannada. But the evidence is so clear that this position has to be accepted. This only means that eminent authors from the Kannada and Tamil areas were capable of original contributions which were rendered later into Sanskrit.

Along with the study of Sanskrit, now-a-days, a great deal of stress is being laid on the study of Prākrit and Apabhraṁśa. This is in a way inevitable and necessary, especially because the study of Prākrit languages and literature has been rather neglected during the last few years.

[शेष पृष्ठ १६८ पर]

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१८४५
हि० ७२७

संगोष्ठी : परिकल्पना और प्रतिक्रियाएँ

अखिल भारतीय प्राच्य विद्या सम्मेलन के चौबीसवें अधिवेशन के अवसर पर जैन साहित्य विषयक एक गोष्ठी का आयोजन करने के उद्देश्य से विद्वानों को भारतीय ज्ञानपीठ के मन्त्री कार्यालय से यह परिपत्र भेजा गया था :

"जैसा कि आपको विदित है १२ से १४ अक्तूबर १९६८ को वाराणसी में अखिल भारतीय प्राच्य विद्या सम्मेलन का २४वाँ अधिवेशन हो रहा है। भारतीय साहित्य, इतिहास, दर्शन, धर्म तथा प्राच्य विद्या के अन्य क्षेत्रों में काम करने वाले अनेक ख्यातिप्राप्त विद्वान् इस सम्मेलन में भाग ले रहे हैं।...

आप जैन विद्या के अध्ययन-अध्यापन एवं सम्पादन, लेखन-प्रकाशन आदि के क्षेत्र से सम्बन्धित हैं। हमारा विचार है कि इस अवसर पर एक ऐसी गोष्ठी आयोजित की जाये जिस में जैन साहित्य के सम्पादन-प्रकाशन एवं प्रचार-प्रसार सम्बन्धी समस्याओं पर विचार किया जाये और सम्मिलित प्रयत्न से ऐसे उपायों की खोज की जाये जिस के द्वारा निम्नलिखित उद्देश्यों की सिद्धि हो सके—

१. विभिन्न संस्थाओं और माध्यमों-द्वारा जैन साहित्य के सम्पादन प्रकाशन की वर्तमान योजनाओं का प्रगति-परिचय एवं भविष्य की योजनाओं के सम्बन्ध में पारस्परिक जानकारी।

२. जहाँ कहीं प्रकाशन-योजनाओं में प्रयत्नों की पुनरावृत्ति हो रही दिखाई दे उस के सम्बन्ध में कार्य-विभाजन आदि की सम्भावनाओं पर विचार।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

३. सम्पादन-प्रकाशन के क्षेत्र की जो दिशाएँ अभी अछूती हों अथवा जिन दिशाओं में विशेष रूप से काम करने की आवश्यकता है, उन के विषय में विचार-विनिमय तथा कोई सुचिन्तित योजना बनाने की दिशा में प्रयास ।

४. प्रकाशित साहित्य की विक्री और प्रचार-प्रसार के सम्बन्ध में संयुक्त प्रयत्नों की सम्भावनाओं पर विचार, जिस से जैन-साहित्य के पाठकों की संख्या बढ़े और प्रकाशन-योजनाओं को बल मिले ।

५. शोध-कार्यों का सिंहावलोकन एवं शोध-निबन्धों, पाण्डुलिपियों आदि के प्रकाशन से सम्बन्धित समस्याएँ ।

६. जैन-समाज के विभिन्न क्षेत्रों में प्रकाशित होने वाली जैन पत्र-पत्रिकाओं की वर्तमान स्थिति, उन की समस्याएँ और उन के पाठकों की संख्या बढ़ाने की दिशा में किसी संयुक्त कार्यक्रम को निश्चित करने की सम्भावना पर विचार । प्रकाशित साहित्य के प्रचार-प्रसार, समीक्षा आदि की दिशा में पत्र-पत्रिकाओं के सहयोग के कार्यक्रम पर विचार ।

जैन साहित्य के सम्पादन-प्रकाशन के क्षेत्र से सम्बन्धित जो महानुभाव ओरियण्टल कान्फ्रेन्स में भाग लेने के लिए कान्फ्रेन्स के निमन्त्रण पर सदस्य या संस्था प्रतिनिधि के रूप में आ रहे हैं वे तो इस गोष्ठी में पधारने के लिए निमन्त्रित हैं ही, अन्य सम्बन्धित सज्जनों को भी आप कृपया प्रेरणा करें कि वे भी कान्फ्रेन्स की सदस्यता का फॉर्म तत्काल भर दें और गोष्ठी में पधारें ।

इस प्रकार की गोष्ठी के विषय में आप के क्या विचार हैं और इस योजना के सम्बन्ध में आप की प्रारम्भिक प्रतिक्रिया क्या है, कृपया लौटती डाक से सूचित करें । गोष्ठी का आयोजन श्री साहू शान्तिप्रसाद जी की प्रेरणा से भारतीय ज्ञानपीठ के तत्त्वावधान में करने का विचार है । साहू जी स्वयं भी इस विचार-विनिमय में सम्मिलित होंगे ।"

परिपत्र के उत्तर में विद्वानों के जो सुझाव और प्रतिक्रियाएँ प्राप्त हुई उन से इस आयोजन की क्रियान्विति को बल मिला । प्रतिक्रियाएँ इस प्रकार रहीं—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अगरचन्द नाहटा

(क) चर्चा का विषय केवल सम्पादन प्रकाशन तक ही सीमित न रहकर व्यापक हो। शिक्षा जैन समाज में भी बहुत बढ़ रही है पर धर्म-संस्कार तेजी से घट रहे हैं। अतः भविष्य में शिक्षित जैनों में जैनधर्म कैसे टिके, इस समस्या पर विचार हो। अन्यथा भविष्य अन्धकारपूर्ण नज़र आता है। जैन घरों में जो स्थिति हो रही है वह सामने है।

(ख) जैन शिक्षा संस्थाएँ अनेक हैं पर वहाँ धार्मिक शिक्षा की सुव्यवस्था नहीं। लाखों रुपये खर्च हो कर भी जैनत्व की दृष्टि से कुछ लाभ नज़र नहीं आता। अतः सारे जैन समाज को साथ हो कर ऐसे धार्मिक पाठ्यक्रम का निर्माण करना।

(ग) युगानुकूल संस्थाओं का निर्माण। केवल प्राचीन जैन साहित्य नव-शिक्षितों को आकर्षित नहीं कर सकता। अतः नवशिक्षित रुचि से पढ़ सकें ऐसे ग्रन्थ तैयार हों। कथा-कहानी जैन ग्रन्थों में हज़ारों हैं। उन को आधुनिक शैली से कहानी, उपन्यास लेखादि के रूप में लिखावें, छपावें। जैन धर्म, दर्शन, इतिहासादि सम्बन्धी ग्रन्थ भी जैन, जैनेतर रुचि से पढ़ सकें, ऐसे तैयार हों।

डॉ कस्तूरचन्द कासलीवाल

यह पढ़कर अत्यधिक प्रसन्नता हुई कि वाराणसी में होने वाले प्राच्य विद्या सम्मेलन के अवसर पर जैन साहित्य के सम्पादन, प्रकाशन एवं प्रचार-प्रसार सम्बन्धी समस्याओं पर विचार करने के लिए एक गोष्ठी का समायोजन किया जा रहा है। आशा है, आप के द्वारा निर्दिष्ट सभी उद्देश्यों पर उस में विचार-विमर्श होगा और कोई ठोस परिणाम निकल सकेगा। उस विषय में मेरे कुछ विचार निम्न प्रकार हैं :—

१. जैन-साहित्य का प्रकाशन एवं शोध-कार्य करने वाली प्रत्येक संस्था "त्रैमासिक रिपोर्ट" के रूप में एक-दूसरे को अपने द्वारा सम्पादित एवं प्रकाशित सामग्री के सम्बन्ध में जानकारी दे। कौन-कौन रिसर्च स्कॉलर किन-किन विषयों

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

को लेकर संस्था में शोध कार्य कर रहे हैं, इस की जानकारी भी हो, जिस से जैन विषयों की पुनरावृत्ति न हो।

२. प्रकाशित पुस्तकों की बिक्री के लिए एक ऐसी संस्था गठित की जावे जो सभी पुस्तकों की बिक्री के लिए देहली, कलकत्ता, बम्बई, मद्रास, आगरा तथा जयपुर जैसे नगरों में अपनी शाखाएँ स्थापित करे जिस से समाज की संस्थाओं द्वारा अथवा अन्य किसी संस्था द्वारा प्रकाशित साहित्य की उपलब्धि हो सके।

३. जैन विषयों को ले कर स्वीकृत सभी शोध-महानिबन्धों को प्रकाशित कराने का प्रयास किया जावे और उन्हें विश्वविद्यालयों, कॉलेजों, पुस्तकालयों आदि में भेजा जावे, जिस से जैन साहित्य का अधिक से अधिक प्रचार हो सके।

४. जैन पत्र-पत्रिकाएँ—साप्ताहिक, पाक्षिक, मासिक, द्वैमासिक, त्रैमासिक एवं अर्द्धवार्षिक के रूप में प्रकाशित होती हैं। इन की स्थिति एवं ग्राहक संख्या के झंझट में पड़ने की हमें आवश्यकता नहीं है। यदि कोई शोध-पत्रिका (अनेकान्त, जैन सिद्धान्त भास्कर) हो तो उस की स्थिति एवं उस के विकास के सम्बन्ध में फिर भी विचार किया जा सकता है। क्योंकि पत्र-पत्रिकाओं के उद्देश्य भिन्न-भिन्न हैं, उन का एकीकरण करना सहज कार्य नहीं है।

५. विश्वविद्यालयों की विभिन्न कक्षाओं के पाठ्य-क्रम में जैन विद्वानों द्वारा रचित रचनाओं को भी स्थान दिलाने का प्रयास किया जाना चाहिए। इस के अतिरिक्त जिन पुस्तकों में जैन संस्कृति, साहित्य एवं धर्म के सम्बन्ध में कुछ कम लिखा गया है; उन पुस्तकों में विस्तार से लिखाये जाने का भी प्रयास करना चाहिए।

डॉ० ज्योतिप्रसाद जैन

जिस प्रकार की जैन विचार गोष्ठी के आयोजन का प्रस्ताव है, उस की आवश्यकता एवं उपयोगिता के विषय में दो मत नहीं हो सकते। मेरी समझ में तो ऐसी गोष्ठी वर्ष में एक बार तो अवश्य ही हो। जिन छह उद्देश्यों को दृष्टि में रख कर यह गोष्ठी की जा रही है, वह सब ही महत्त्वपूर्ण एवं समयोपयोगी हैं। हमारे समाज में मौलिक साहित्य का निर्माण भी अस्तव्यस्त है और प्राचीन रचनाओं के अनुवाद, सम्पादन आदि की स्थिति भी, कतिपय अपवादों को छोड़ कर, स्तरीय

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नहीं कही जा सकती। तीन-चार संस्थाएँ ही ऐसी हैं जो इस दिशा में प्रयास कर रही हैं। मुझे क्षमा करेंगे यदि मैं यह कहूँ कि भा० ज्ञानपीठ के प्रकाशन भी (मैं केवल उस के द्वारा सम्पादित-प्रकाशित जैन ग्रन्थों की ही बात कह रहा हूँ) बहुधा मन पर यह छाप छोड़ते हैं कि जैसा होना चाहिए था, अथवा थोड़े अधिक परिश्रम और सावधानी से हो सकता था, नहीं हो पाया। हमारे यहाँ साहित्यिक समालोचना जैसी भी कोई चीज़ नहीं है। जैन लेखक समालोचना के आदी ही नहीं हैं, वरन् उस से भड़कते हैं। यदि किसी ने चाहे कितने ही नम्र शब्दों में तनिक-सा भी किसी त्रुटि की ओर संकेत करने की धृष्टता कर दी तो लेखक और प्रकाशक दोनों ही उस के व्यक्तिगत शत्रु बन जाते हैं। इसलिए चाहते हुए भी, जो समर्थ हैं वे भी, समालोचना करने में संकोच करते हैं। परिणाम यह होता है कि प्रकाशनों का स्तर सुधरने के बजाय कुछ गिरता ही जाता है।

अप्रकाशित ग्रन्थों के सुसम्पादित संस्करण और विविध विषयक मौलिक रचनाओं के प्रकाशन के साथ-साथ उपयोगी सन्दर्भ ग्रन्थों के निर्माण एवं प्रकाशन की भी अतीव आवश्यकता है। बहुधा शोध-प्रबन्ध भी जिस रूप में डिग्री के लिए विश्वविद्यालय में प्रस्तुत किये जाते हैं, उसी रूप में प्रकाशित करने योग्य नहीं होते। विभिन्न प्रकाशन संस्थाओं एवं माध्यमों में कार्य एवं क्षेत्र विभाजन आवश्यक है ही—व्यर्थ की पुनरावृत्ति न हो यह व्यवस्था होनी ही चाहिए। इसी प्रकार अनेक अंट-शंट पत्र-पत्रिकाओं के स्थान में गिनी-चुनी, सुन्दर, पठनीय सामग्री से पूर्ण पत्र-पत्रिकाओं से उन के सम्पादक-प्रकाशकों का तथा पाठकों का कहीं अधिक हित होगा, इस में सन्देह नहीं है।

यह भी एक तथ्य है कि इस समाज में पुस्तकों के पढ़ने की अभिरुचि बहुत कम है, विशेषकर पुस्तकों को क्रय कर के। अतएव ऐसी कोई योजना बनाना आवश्यक ही है कि जिस से पुस्तक पढ़ने और क्रय करने की प्रवृत्ति को प्रोत्साहन मिले।

डॉ० देवेन्द्रकुमार जैन

प्रस्तावित जैन-गोष्ठी और माननीय साहू जी के सुझाव सचमुच स्तुत्य हैं। इस में सन्देह नहीं कि युग की माँग और साधनों की दृष्टि से यह ज़रूरी है कि हम जो

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भी करें उस की पुनरावृत्ति न हो, और जैन साहित्य के 'अछूते अंगों' पर प्रकाशन और शोध की दृष्टि से विशेष ध्यान दिया जाय। इस सन्दर्भ में मेरे दो-तीन सुझाव हैं; चूँकि मेरा कार्यक्षेत्र सीमित है, अतः मैं उसी तक सीमित रहूँगा।

१. अप्रकाशित प्राकृत-अपभ्रंश काव्य-कृतियों का सम्पादन-प्रकाशन।
२. प्रकाशित रचनाओं का प्रामाणिक अनुवाद सुलभ करना।
३. अपभ्रंश शब्दकोष का प्रकाशन-सम्पादन।
४. प्राकृत अपभ्रंश की विभिन्न काव्य-विधाओं पर आलोचनात्मक शोध-प्रबन्ध।
५. १६ और १७वीं सदी के जैन कवियों की कृतियों का सर्वसंग्रह : सम्पादित पाण्डुलिपियों का संग्रह, आवश्यक भूमिका के साथ।
६. बीसवीं सदी की प्रमुख जैन विचारधाराओं का ऐतिहासिक और सामयिक परिप्रेक्ष्य में वैज्ञानिक अध्ययन।
७. जैन संस्कृत साहित्य की विभिन्न विधाओं में उपलब्ध कृतियों का, एक विधा के रूप में विश्लेषणात्मक अध्ययन।

सारे कार्य के सम्पादन-प्रकाशन के लिए—एक केन्द्रीय निर्देशक बोर्ड हो, कार्य विभिन्न संस्थाओं के माध्यम से कराया जा सकता है; पर उन के लिए कम से कम स्वीकृत मानदण्ड हो।

डॉ० परमेष्ठीदास जैन

जिन समस्याओं के समाधान के लिए यह गोष्ठी आयोजित की जा रही है, वे यथार्थ में अधिक महत्त्वपूर्ण हैं। सामूहिक प्रयास से इस में अवश्यमेव सफलता प्राप्त होगी। यह बहुत आवश्यक है कि आधुनिक ढंग से दिगम्बर जैन साहित्य का परिचय लोगों को हो।

प्रो० प्रेम सुमन जैन

गोष्ठी में विचारार्थ प्रस्तावित विषय सम्पादन-प्रकाशन से ही अधिक सम्बन्धित हैं, जब कि जैन संस्कृति के प्रचारार्थ अन्य आवश्यक कार्य भी अपेक्षित हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मेरे विचार से जैन विद्या का विश्वविद्यालयीय स्तर पर अध्यापन कैसे प्रगतिशील हो, इस पर भी विचार-विमर्श होना चाहिए।

डॉ० भागचन्द्र जैन

जिन छह उद्देश्यों की सिद्धि की पृष्ठ-भूमि में यह निश्चय किया गया है, वे निःसन्देह वर्तमान परिस्थितियों के सन्दर्भ में विचारणीय हैं। आशा है, हम सभी उन सारी समस्याओं पर भरपूर विचार कर कोई समाधानात्मक मार्ग पा सकेंगे। विचार-विनिमय द्वारा इस उद्देश्य-सिद्धि की दिशा में साहू जी एवं आप की उपस्थिति अधिकाधिक उपयोगी रहेगी। भारतीय ज्ञानपीठ का इस क्षेत्र में एक और नया क़दम होगा।

श्री रतनलाल कटारिया

आप जिस गोष्ठी का आयोजन कर रहे हैं वह बहुत श्रेयस्कर और अत्यन्त आवश्यक है। मैं उस की पूर्ण सफलता की कामना करता हूँ। आप ने इस गोष्ठी में जो ६ विचारणीय विषय रखे हैं उन में से कुछ पर मैं अपने संक्षिप्त विचार प्रस्तुत करता हूँ। आशा है आप इन को गोष्ठी में रख कर इन पर विद्वानों की सम्मति ले इन्हें क्रियान्वित करने की कृपा करेंगे।

बहुत-सा महत्त्वपूर्ण जैन-साहित्य अँगरेज़ी आदि भाषाओं में प्रकाशित हुआ है। उस का राष्ट्र भाषा हिन्दी में अनुवाद प्रकाशित होना चाहिए, ताकि वह महत्त्व की वस्तु जन-जन के उपयोग में आ सके। उदाहरणार्थ—प्रो० हन्दिकी का "यशस्तिलक एण्ड इण्डियन कल्चर" ग्रन्थ जो अँगरेज़ी में प्रकाशित हुआ है। इसी तरह सिंघी जैन ग्रन्थ-माला से प्रकाशित हरिषेण कथाकोश ग्रन्थ की डॉ० ए० एन० उपाध्ये लिखित विशाल अँगरेज़ी प्रस्तावना।

गीता प्रेस गोरखपुर, जो हिन्दू संस्कृति की एक प्रामाणिक लोकप्रिय अत्यन्त सस्ती प्रकाशन संस्था है, उसी तरह भारतीय ज्ञानपीठ भी जैन संस्कृति के लिए प्रयत्न करे। मुझे जहाँ तक स्मरण है ज्ञानपीठ की जब स्थापना हुई थी तब मान्यवर साहू जी ने प्रारम्भ में ही ५ लाख रुपये दे कर जैन साहित्य के प्रकाशन की सुन्दर योजना बनायी थी। प्रारम्भ में जैन साहित्य के प्रकाशन पर पूर्ण लक्ष्य

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रखा गया, किन्तु बाद में जैन साहित्य के प्रकाशन की गति तो अत्यन्त मन्द हो गयी और जैनेतर साहित्य विपुल मात्रा में प्रकाशित होने लगा। यही हालत ज्ञानोदय पत्र की हुई। पहले वह जैन पत्र था आज तो उस में जैनत्व का नाम-निशान नहीं। मैं यह मानता हूँ कि—ज्ञानपीठ ने अत्यल्प काल में ही विपुल साहित्य का प्रकाशन किया है और आज वह विश्व की हिन्दी प्रकाशन संस्थाओं में सर्वोपरि और अत्यन्त लोकप्रिय प्रसिद्ध संस्था हो गयी है। इस से जैनों का गौरव बढ़ा है और जैन साहित्य भी काफ़ी विद्वानों के परिचय में आया है।

अब श्री साहू जी ने जो विस्मृत जैन साहित्य के लिए पुनः तत्परता प्रदर्शित की है यह सौभाग्य की बात है। मेरे सुझाव हैं कि—गीता प्रेस की तरह ही जैन साहित्य भी सुन्दर कलात्मक पौराणिक चित्रों से सुसज्जित होके प्रकाशित हो। इस के लिए गीता प्रेस ही की तरह २–३ कलाकार (प्रतिभाशाली चित्रकार) नियमित रखने होंगे जो जैन विद्वान् के निर्देशन में जैन सिद्धान्तानुसार रंगीन और सादे चित्र बनायें। (ज्ञानपीठ से प्रकाशित कुछ जैन ग्रन्थों के आदि अन्त में जो कलात्मक चित्र दिये गये थे वे बड़े सुन्दर थे—कलाकार प्रतिभाशाली थे—सुगन्धदशमी कथा भी सुन्दर सचित्र प्रकाशन है)। यह तो हुई सचित्र प्रकाशन की बात। अलग से भी बड़े आकार में ग्लेज पेपर पर विभिन्न चित्र प्रकाशित हों। ज्ञानपीठ नववर्ष पर अपना कैलेण्डर निकाले जो जैन-चित्रमय हो। इसी प्रकार गीता प्रेस की तरह जैन साहित्य सस्ते मूल्य में देने की योजना हो ताकि कुछ विशेष प्रचार हो सके। ज्ञानपीठ के प्रकाशन बड़े महँगे होते हैं, उन का कम से कम मूल्य हो इस ओर लक्ष्य होना चाहिए। प्रारम्भ में इन योजनाओं से काफ़ी घाटा भी हो सकता है, किन्तु धीरे-धीरे प्रचार प्रयत्न होने पर घाटे की पूर्ति होने लगेगी—अगर घाटा भी रहे तो इसे घाटा न मान कर जैन साहित्य के प्रचार के लिए किया गया खर्च मात्र मानना चाहिए। जैन समाज बड़ी धनाढ्य मानी जाती है किन्तु उस के साहित्य प्रकाशनों से तो वह दरिद्र ही परिलक्षित होती हैं। कुछ भी हो एक बार तो उसे साहित्य प्रकाशन के क्षेत्र में भी अपनी धनाढ्यता का परिचय देना ही चाहिए। इसी तरह चलचित्र-सिनेमा के विषय में भी उसे अपनी धनाढ्यता को सार्थक करना चाहिए। एक जैन चलचित्र तो अवश्य शीघ्र ही निर्माण होना चाहिए। किसी तरह जैन भजनों के

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रेकार्ड भी काफ़ी मात्रा में निकलने चाहिए। जैन उत्सवों पर जब लाउड स्पीकर पर इश्किया गीत सुनाई देते हैं तो बड़ा भद्दा प्रतीत होता है—इस के लिए जैन-रेकार्डों की अत्यन्त आवश्यकता है। ये जैन-रेकार्ड संगीत के कार्यक्रम में रेडियो पर भी प्रसारित हों, ऐसा प्रयत्न भी हो। रेडियो पर जैन धर्म के सिद्धान्त उपदेश संगीत भी कभी-कभी सुनाई दें इस ओर भी अच्छा प्रयत्न होना चाहिए।

इस युग के वैज्ञानिक साधनों का जैन समाज को भी धर्म-प्रचार में पूर्ण उपयोग करना चाहिए नहीं तो हम बहुत पिछड़ जायेंगे।

बहुत से विद्वानों के महत्त्वपूर्ण शोध निबन्ध अप्रकाशित पड़े हैं उन में से जो राष्ट्रभाषा हिन्दी के हों उन्हें तो प्रकाशित करने का प्रयत्न ज्ञानपीठ को करना चाहिए। रतनचन्द जी मुख्तार ने बहुत से शंका-समाधान प्रकट किये हैं उन्हें सुसम्पादित कराके पुस्तकाकार ज्ञानपीठ से प्रकाशित करने चाहिए। ये जैन-तत्त्वज्ञान की वृद्धि में परम सहायक होंगे। ज्ञानपीठ की ओर से जिन जैन ग्रन्थों के शीघ्र प्रकाशन की घोषणा की गयी है उन्हें काफ़ी अरसा हो गया है किन्तु एक भी ग्रन्थ प्रकाश में नहीं आया है इस मोहनिद्रा का त्याग कर प्रकाशन की गति को द्रुत करना चाहिए। ज्ञानपीठ को जैन ग्रन्थों के प्रकाशन को अपना मुख्य और मूल ध्येय मान कर चलना चाहिए तभी कुछ जैन साहित्य का उद्धार, प्रचार-प्रसार हो सकेगा। ज्ञानपीठ से जिस अनुपात में जैनेतर साहित्य प्रकाशित हुआ है उस का दशांश भी जैन साहित्य प्रकाशित नहीं हुआ है यह स्थिति अच्छी नहीं है जैन-साहित्य का अनुपात बढ़े इस ओर पूर्ण प्रयत्न होना चाहिए। (हमारी 'जैन-निबन्ध रत्नावली' बाबू छोटेलाल ने कलकत्ता से प्रकाशित की थी उस का दूसरा भाग भी वे छपाने को थे किन्तु हमारे दुर्भाग्य से वे स्वर्गवासी हो गये। क्या ज्ञान-पीठ से निबन्धावली का दूसरा भाग प्रकाशित हो सकता है? ५० क़रीब निबन्ध हैं, पृष्ठ ३५० क़रीब होंगे। इन निबन्धों की संक्षिप्त परिचय के साथ सूची भी हम ने तैयार कर रखी है। निबन्ध सब प्रमेय बहुल शोध खोज की नवीन सामग्री से पूर्ण और रोचक हैं। किस को क्या और कैसे पत्र लिखना, इस का निर्देश करने की कृपा करें)

(६) दि० जैन समाज में ६–७ साप्ताहिक पत्रिकाएँ प्रकाशित होती हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अगर संयुक्त रूप से एक ही हो तो उस की ग्राहक संख्या भी बढ़ सकती है उस का कलेवर और सामग्री भी बढ़ सकती है मूल्य भी कुछ कम हो सकता है और घाटा भी नहीं रह सकता तथा समाज में भी एकता और एक आवाज़ पैदा हो सकती है। यही जैन परीक्षालयों व जैन पाठ्य-पुस्तकों के विषय में स्थिति है। एक जैन दैनिक-पत्र निकल सके तो उस ओर भी प्रयत्न होना चाहिए।

डॉ० विमलप्रकाश जैन

योजना अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है, इस सम्बन्ध में कोई दो मत नहीं हो सकते। विस्तार से विचार करना तो श्रद्धेय साहू जी, आप तथा पूज्य डॉ० हीरालाल जी एवं डॉ० उपाध्ये जी की उपस्थिति में वाराणसी में ही सम्भव हो सकेगा, फिर भी इस योजना को योग्य रीति से क्रियान्वित करने की दृष्टि से मेरा विचार है कि देश के किन-किन विश्वविद्यालयों तथा संस्थानों में प्राकृत एवं जैन साहित्य धर्म-दर्शन आदि का अध्ययन-अध्यापन अथवा इन पर शोध कार्य हो रहा है, और कितने विद्वान् इस क्षेत्र में कार्यरत हैं, इस के आँकड़े हमारे पास होने आवश्यक हैं। इन सूचनाओं और आँकड़ों के बिना हम अपनी योजना आगे नहीं बढ़ा सकेंगे।

स्थान-स्थान की जैन पंचायतें तथा अन्य जैन सामाजिक संस्थाएँ विविध व्यक्तियों अथवा प्रकाशन संस्थाओं के द्वारा प्रकाशित तथा प्रकाश्यमान जैन-साहित्य के सम्बन्ध में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण जानकारी दे सकती हैं। प्रकाशित साहित्य की बिक्री और प्रचार-प्रसार के कार्य में भी जैन सामाजिक संस्थाओं का बहुत अधिक योगदान हो सकता है, और उसे प्राप्त करना आवश्यक है। सर्व-साधारण जैन-अजैन पाठकों में जैन-साहित्य के प्रचार-प्रसार की दृष्टि से साहित्य के प्रकाशन के समय ग्रन्थों के शीर्षकों तथा विषय-वर्णन की शैली पर लोकप्रियता की दृष्टि से विचार होना आवश्यक है। विविध जैन पत्र-पत्रिकाएँ भी योजना के मद क्र० १ व ४ की दृष्टि से विशेष सहायक हो सकती हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रो० वीरेन्द्रकुमार जैन

आप लोग एवं श्रीमन्त साहू जी जैनविद्या के प्रसार-प्रचार के कार्यों को अग्रसर करने के लिए अथक रूप से दत्तचित हैं, यह एक हार्दिक प्रसन्नता का विषय है। आप के द्वारा प्रस्तुत ३ एवं ४ क्रमांकित उद्देश्यों के विषय में मैं कुछ कहना चाहता हूँ—

क्रमांक ३—प्राय: विशालकाय ग्रन्थ अधिक छप रहे हैं। इन में आवश्यक से श्रम, पूँजी एवं अनेक बातें विशाल परिमाण में व्यवहृत होती हैं। मेरी विनम्र राय में हमें लघुकाय ग्रन्थ अथवा 'पॉकेट बुक सीरीज़' जैसी योजना हाथ में लेनी चाहिए। इस सीरीज़ में प्रकाशित पुस्तकों की कीमत अधिक से अधिक दो रुपये हो। पुस्तकों में मूलभाषा एवं कोई भी एक वर्तमान बोल-चाल की भाषा में अनुवाद हो।

कौन-सी पुस्तकें सर्वप्रथम इस सीरीज़ में सम्मिलित हों एतदर्थ प्रत्येक साहित्यिक क्षेत्र के निष्णात विद्वानों का परामर्श लेकर प्राथमिकता निर्धारित की जाये जिस प्रकार गीता प्रेस 'श्रीमद्भगवद्गीता' को अथवा ईसाई बाइबिल आदि के सुलभ संस्करण प्रकाशित करते हैं उसी प्रकार—समयसार, तत्त्वार्थसूत्र आदि के संस्करण प्रकाशित होना आवश्यक है। ऐसी सस्ती एवं धार्मिक लक्ष्य को लेकर बनायी योजना से हम अपने मूल साहित्य को हर एक व्यक्ति तक पहुँचा सकेंगे। इस योजना को आगे बढ़ाने में समाज की धार्मिक संस्थाएँ, विद्यालय, त्यागी, व्रती एवं विद्वान् सभी प्रयत्नशील होंगे।

सस्ती का अर्थ है मूल पाठ के साथ अधिक टीकाओं का अभाव। सामान्य जनता को अधिक टीकाओं से कोई प्रयोजन नहीं होता है। उसे तो मात्र उस की बोलचाल की भाषा में अनुवाद चाहिए। कागज़ मज़बूत और अच्छा हो। क़ीमत के विषय में ऊपर लिखा जा चुका है।

इस योजना में सुनिश्चित रूपेण जैनधर्म, साहित्य, दर्शन, न्याय आदि के प्रत्येक क्षेत्र की लब्धप्रतिष्ठ रचनाएँ सम्मिलित होनी चाहिए।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इस सन्दर्भ में मेरा अभिमत है कि जितना साहित्य प्रकाशित है उस की विक्री एवं प्रचार-प्रसार निम्नरूपेण सम्भव है :

प्रतिवर्ष दीपावली अवकाश एवं ग्रीष्मावकाश के मध्य ऐसे विद्वानों के शिविर आयोजित किये जायें जहाँ इस सम्पूर्ण प्रकाशित साहित्य को उन्हें दिखाया जाये। जब तक वे स्वयं इसे देखेंगे नहीं, तब तक ग्रन्थ-सूची मात्र भेजने से उद्देश्य हल नहीं होगा !—इन शिविरों में किसी एक विशेष विषय, (शिक्षा संस्कृति, आचार) को लेकर अन्वेषण कार्य किया जाये। 'वर्णीस्नातक परिषद्' जैसे नवीन विद्वानों के संगठन इस दिशा में फलप्रद कार्य कर सकते हैं। शिविरों का समय कम से कम तीन सप्ताहों का होना चाहिए। इस की व्यापक रूपरेखा विशेषज्ञ विद्वानों की राय से तैयार की जानी अपेक्षित है। शिविरों के केन्द्र, सागर, वाराणसी, दिल्ली इत्यादि स्थानों पर हो सकते हैं।

पं० हीरालाल शास्त्री

आज इस प्रकार के आयोजन की अत्यन्त आवश्यकता है ताकि हमारा अप्रकाशित विपुल साहित्य नवीन ढंग से संशोधित एवं सम्पादित हो कर प्रकाशित किया जा सके। साथ ही अनेक छोटी-छोटी प्रकाशित करने वाली संस्थाओं के भी एकीकरण की आवश्यकता है ताकि समाज के द्रव्य का समुचित सदुपयोग हो सके। इस के साथ ही प्रकाशित होने वाले साहित्य के प्रचार-प्रसार और विक्री आदि के लिए भी एक संगठित प्रयास की आवश्यकता है।

मुझे आप की यह योजना बहुत पसन्द आयी है। यदि इस के अनुसार कोई सफल मार्ग निकल सकेगा तो निःसन्देह बहुत बड़ा काम साहित्य के प्रचार-प्रसार एवं प्रकाशन की दिशा में सम्पन्न हो सकेगा।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विश्वविद्यालयों में जैन वाङ्मय का अध्ययन और अध्यापन

भारत के पचास विश्वविद्यालयों में एक भी विश्वविद्यालय ऐसा नहीं है जहाँ हाई स्कूल से ले कर अनुसन्धान की श्रेणी तक जैन वाङ्मय के अध्ययन अध्यापन की व्यवस्था हो। बिहार सरकार ने संस्कृत और पाली की तरह प्राकृत तथा जैन धर्म के उच्च अध्ययन के लिए 'प्राकृत, जैन शास्त्र और अहिंसा-शोधपीठ' की स्थापना की थी, जो अब बिहार विश्वविद्यालय के अन्तर्गत संचालित है। पूरे भारत-वर्ष में यह एक मात्र संस्था है जो प्राकृत और जैनधर्म के अध्ययन के लिए शासन द्वारा अनुदान प्राप्त एक स्वतन्त्र संस्थान के रूप में कार्य कर रही है। मात्र इसी की स्वतन्त्र पाठ्यक्रम समिति है। अन्य विश्वविद्यालयों में न तो इन विषयों के अध्ययन-अध्यापन की स्वतन्त्र व्यवस्था है और न पाठ्यक्रम समितियाँ हैं। प्रायः संस्कृत, पालि या हिन्दी की पाठ्यक्रम समिति में प्राकृत और जैन साहित्य भी शामिल है। इसी तरह कम ही विश्वविद्यालय हैं, जहाँ जैन वाङ्मय के अध्ययन-अध्यापन की समुचित सुविधाएँ उपलब्ध हैं। सन् १९६५ में प्राकृत जैन विद्या मण्डल, अहमदाबाद ने प्राकृत विद्या के अध्ययन-अध्यापन का सर्वेक्षण किया था। अभी हम ने प्राकृत तथा जैन विद्याओं के अध्ययन-अध्यापन के विषय में जानकारी एकत्र की है। इन्हीं सूचनाओं के आधार पर यह विवरण प्रस्तुत है—

१. अध्यापन व्यवस्था

मुख्य विषय के रूप में

प्री-यूनिवर्सिटी से एम० ए० तक—

कर्नाटक

गुजरात

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जबलपुर
नागपुर
बम्बई
मगध

केवल एम० ए० में—

विहार

गौण विषय के रूप में

प्री-यूनिवर्सिटी से एम० ए० तक

वड़ौदा
मैसूर
पूना
वाराणसेय
शिवाजी
सरदार पटेल

केवल एम० ए० में अन्य विषयों के साथ

अलीगढ़
इलाहाबाद
उदयपुर
गौहाटी
जोधपुर
दिल्ली
बनारस
यादवपुर
राजस्थान
लखनऊ
विश्वभारती

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

२. पाठ्यक्रम समिति

संस्कृत, पालि और प्राकृत

इलाहाबाद
करनाटक
कुरुक्षेत्र
गौहाटी
जबलपुर
बनारस
बड़ौदा
बम्बई
मैसूर
विश्वभारती
शिवाजी

संस्कृत एवं प्राकृत

पूना
लखनउ
सरदार पटेल
गुजरात

पालि और प्राकृत

गुजरात
नागपुर
मगध
वाराणसेय

हिन्दी, पालि और प्राकृत

अलीगढ़
दिल्ली

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्राकृत एवं जैनोलाजी

विहार

३. अध्यापन व्यवस्था

अधिकांश विश्वविद्यालयों में अन्य विषयों के अध्यापक ही प्राकृत तथा जैन विद्याओंका अध्ययन कराते हैं। इस के लिए स्वतन्त्र रूप से प्राकृत और जैन विद्याओं के विशेषज्ञ विद्वानों की नियुक्तियाँ नहीं की गयी हैं।

४. छात्रवृत्तियाँ

विश्वविद्यालयों में प्राकृत और जैन विद्याओं के अध्ययन के लिए छात्रवृत्तियों की व्यवस्था इस प्रकार है—

नागपुर—केवल पी-एच० डी०

बिहार—एम० ए०, पी-एच० डी०, डी० लिट्

बम्बई—केवल बी० ए०

वाराणसेय—मध्यमा से आचार्य

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि अभी तक किसी भी विश्वविद्यालय में प्राकृत और जैन वाङ्मय के अध्ययन-अध्यापन की समुचित व्यवस्था नहीं है। भारतीय विद्याओं तथा प्राचीन भारतीय वाङ्मय के समग्र अध्ययन के लिए यह नितान्त आवश्यक है कि विश्वविद्यालयों में अन्य विषयों की तरह प्राकृत तथा जैन विद्याओं के भी अध्ययन की समुचित व्यवस्था को जाये। विभिन्न विश्वविद्यालयों में अभी जो व्यवस्था है, उस की सविवरण जानकारी देने का भविष्य में प्रयत्न करेंगे।

■ ■

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भारतीय विश्वविद्यालयों में जैन साहित्य और संस्कृति विषयक शोध-कार्य

विश्वविद्यालयों में जैन साहित्य और संस्कृति विषयक जो शोध-कार्य हुआ है और हो रहा है उस की पूरी जानकारी न हो पाने से शोधकर्ता अपने पूर्व की शोध उपलब्धियों का उपयोग नहीं कर पाते तथा बहुत बार विषयों की पुनरावृत्ति भी होती है। विश्वविद्यालयों तथा शोधकर्ताओं से सम्पर्क करके सूचनाएँ एकत्र करने का प्रयत्न किया गया है। परिणाम-स्वरूप अभी तक जो जानकारी एकत्र हुई है, वह यहाँ प्रस्तुत है। जैन साहित्य और संस्कृति से सम्बन्धित विषयों पर पिछले लगभग दो दशकों में विश्वविद्यालयों में जो शोध-कार्य हुआ तथा वर्तमान में हो रहा है, मात्र उसी की यह जानकारी है। आनरेरी अथवा किसी भी अन्य विषय पर पी-एच० डी० आदि करने वाले जैन विद्वानों की नहीं। इस सूची के अतिरिक्त और जो कार्य हुआ है या हो रहा है, उस विषय में जानकारी भेजने का अनुरोध है।

विषय तथा उपाधि	विश्वविद्यालय का नाम	शोधकर्ता का नाम-पता
१. लाइफ इन ऐंशियंट इंडिया ऐज़ डिपिक्टेड इन जैन केनन (पी-एच. डी., अँगरेज़ी)	बम्बई विश्वविद्यालय १९४४ (प्रकाशित)	डॉ० जगदीशचन्द्र जैन, २८, शिवाजी पार्क, बम्बई–२८
२. स्टडीज़ इन जैन फिलासफी (डी० लिट्, अँगरेज़ी)	कलकत्ता विश्वविद्यालय (प्रकाशित)	डॉ० नथमल टाटिया, डायरेक्टर, प्राकृत जैन विद्यापीठ, वैशाली (बिहार)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

३. प्राकृत, अपभ्रंश साहित्य और हिन्दी पर उसका प्रभाव (पी-एच० डी०, हिन्दी)	इलाहाबाद विश्वविद्यालय १९५१ (प्रकाशित)	डॉ० रामसिंह तोमर अध्यक्ष हिन्दी विभाग, विश्वभारती, शान्ति-निकेतन
४. जैन एपिस्टीमोलाजी (पी-एच० डी०, अँगरेज़ी)	हिन्दू विश्वविद्यालय १९५२ (अप्रकाशित)	डॉ० इन्द्रचन्द्र शास्त्री, १०।१७ शक्तिनगर, दिल्ली-७
५. अपभ्रंश साहित्य (पी-एच० डी०, हिन्दी)	दिल्ली विश्वविद्यालय १९५२ (प्रकाशित)	डॉ हरिवंश कोछड़
६. पोलिटिकल हिस्ट्री ऑफ नार्दर्न इंडिया फ्रॉम जेन सोर्सेज (पी-एच० डी०, अँगरेज़ी)	हिन्दू विश्वविद्यालय (पार्श्वनाथ विद्याश्रम) १९५४ (प्रकाशित)	डॉ० गुलाबचन्द्र चौधरी, नालन्दा पालि संस्थान, नालन्दा (बिहार)
७. जैनिज़्म इन राजस्थान (पी-एच०डी०, अंगरज़ी)	राजस्थान विश्वविद्यालय १९५४-५५ (प्रकाशित)	डॉ० कैलाशचन्द्र जैन, इतिहास विभाग, विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन
८. जैन कर्म-सिद्धान्त का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण (पी-एच० डी०, अँगरेज़ी)	हिन्दू विश्वविद्यालय, १९५५ (प्रकाशित)	डॉ० मोहनलाल मेहता, पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध-संस्थान, वाराणसी—५
९. जैन राजनीति (पी-एच०डी०, अँगरेज़ी)	आगरा विश्वविद्यालय, (अप्रकाशित)	डॉ० श्यामसिंह जैन, प्रिंसीपल, के० वी० कालेज, मिर्ज़ापुर
१०. स्टडीज इन द जैन सोर्सेज ऑव द हिस्ट्री ऑव एन्सिएन्ट इंडिया (१००० बी० सी०—९०० ए० डी०) (पी-एच० डी०, अँगरेज़ी)	आगरा विश्वविद्यालय १९५६	डॉ० ज्योतिप्रसाद जैन, ज्योति निकुंज, चार बाग, लखनऊ (उ० प्र०)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

११.	जैन आगम शास्त्र के अनुसार मानव व्यक्तित्व का विकास (पी-एच० डी०, हिन्दी)	सागर विश्वविद्यालय १९५७ (अप्रकाशित)	डॉ० हरीन्द्रभूषण जैन, संस्कृत विभाग, विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन
१२.	अपभ्रंश साहित्य (पी-एच०डी०, हिन्दी)	आगरा विश्वविद्यालय, १९५७ (प्रकाशित)	डॉ० देवेन्द्रकुमार जैन, अध्यक्ष, हिन्दी विभाग होल्कर कालेज, इन्दौर
१३.	अपभ्रंश काव्य परम्परा और विद्यापति (पी-एच०डी०, हिन्दी)	आगरा विश्वविद्यालय १९५८	डॉ० अम्बादत्त पन्त
१४.	ए क्रिटिकल एण्ड कम्पैरेटिव स्टडी ऑफ़ रिलीजन एण्ड इथिक्स। (पी-एच.डी., अँगरेज़ी)	हिन्दू विश्वविद्यालय, १९५८ (अप्रकाशित)	डॉ० वी० वी० रायनाडे, दर्शन विभाग, विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन
१५.	छठी से आठवीं शताब्दी के हिन्दी जैन लेखक (पी-एच०डी०, हिन्दी)	आगरा विश्वविद्यालय (अप्रकाशित)	डॉ० धन्यकुमार जैन, अलीगढ़
१६.	हिन्दी जैन भक्ति काव्य में जैन साहित्य का योगदान (पी-एच० डी०, हिन्दी)	आगरा विश्वविद्यालय, १९५९ (प्रकाशित)	डॉ० प्रेमसागर जैन, अध्यक्ष हिन्दी विभाग, दि० जैन कालेज, बड़ौत
१७.	आचार्य पुष्पदन्त : एक अध्ययन (पी-एच० डी०, हिन्दी)	आगरा विश्वविद्यालय, १९५९ (अप्रकाशित)	डॉ० राजकुमार जैन, अध्यक्ष संस्कृत विभाग, आगरा कालेज, आगरा
१८.	कविवर बनारसीदास, जीवनी और कृतित्व (पी-एच०डी०, हिन्दी)	आगरा विश्वविद्यालय, १९५९ (प्रकाशित)	डॉ० रवीन्द्रकुमार जैन, श्री वेंकटेश्वर विश्वविद्यालय, तिरुपति, (आन्ध्र)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१९. भट्टारक सम्प्रदाय (पी-एच०डी०,हिन्दी)	नागपुर विश्वविद्यालय १९५९ (प्रकाशित)	डॉ० विद्याधर जोहरापुरकर, ग०कालिज,(मंडला)
२०. आदिकालीन हिन्दी जैन साहित्य (पी-एच०डी०, हिन्दी)	इलाहाबाद विश्वविद्यालय १९५९	डॉ० हरिशंकर शर्मा
२१. जैनधर्म में आत्मा का स्वरूप (पी-एच० डी०, अँगरेज़ी)	आगरा विश्वविद्यालय, १९६० (अप्रकाशित)	डॉ० सुमतिचन्द्र जैन, जे ११।४१ राजोरी गार्डन, नई दिल्ली
२२. भगवतीसूत्र : एक अध्ययन (पी-एच० डी०, अँगरेज़ी)	विहार विश्वविद्यालय, १९६० (प्रकाशित)	डॉ० जे० सी० सिकदार एल० डी० इन्स्टीट्यूट ऑफ़ इण्डोलाजी अहमदाबाद–९
२३. एथिकल डाक्ट्रिन्स इन जैनिज़्म (पी-एच० डी०, अँगरेज़ी)	राजस्थान विश्वविद्यालय १९६१ (अप्रकाशित)	डॉ० कमलचन्द्र सोगानी, १०६ अशोकनगर, उदयपुर
२४. प्राचीन हिन्दी साहित्य पर जैन साहित्य का प्रभाव (पी-एच० डी०, हिन्दी)	अलीगढ़ विश्वविद्यालय १९६१	डॉ० धन्यकुमार जन
२५. हरिभद्र के प्राकृत कथा साहित्य का आलोचनात्मक अध्ययन (पी-एच० डी०, हिन्दी)	बिहार विश्वविद्यालय, १९६१ (प्रकाशित)	डॉ० नेमिचन्द्र शास्त्री, भोला भवन, १, महाजन टोली, आरा (बिहार)
२६. जैन कवि स्वयंभूकृत पउमचरिउ तथा तुलसीकृत रामायण (पी-एच० डी०, हिन्दी)	आगरा विश्वविद्यालय १९६२ (अप्रकाशित)	डॉ० ओमप्रकाश दीक्षित, हिन्दी विभागाध्यक्ष, जे० वी० कालेज, सहारनपुर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

२७. ए क्रिटिकल स्टडी आफ़ पउमचरियं ऑफ़ विमल सूरि (पी-एच० डी०, अँगरेज़ी)	प्राकृत जैन विद्यापीठ, वैशाली १९६२ (अप्रकाशित)	डॉ० के० ऋषभचन्द्र, सीनियर रिसर्च आफ़िसर, एल० डी० इंस्टीटयूट ऑफ़ इंडोलोजी, अहमदाबाद-९
२८. आचार्य कुन्दकुन्द का दर्शन (पी-एच० डी०, अँगरेज़ी)	आगरा विश्वविद्यालय १९६३ (अप्रकाशित)	डॉ० प्रद्युम्नकुमार जैन, गवर्नमेण्ट कालेज, टिहरी, गढ़वाल
२९. पउमचरिउ और रामचरित मानस का तुलनात्मक अध्ययन (पी-एच० डी०, हिन्दी)	बिहार विश्वविद्यालय १९६३ (अप्रकाशित)	डॉ० देवेन्द्रनारायण शर्मा, वैशाली शोध संस्थान, वैशाली, ज़िला मुज़फ़्फ़रपुर
३०. प्राचीन हिन्दी काव्य में अहिंसा के तत्त्व (पी-एच०डी०, हिन्दी)	बिहार विश्वविद्यालय १९६३	डॉ० विद्यानाथ मिश्र, हिन्दी विभाग, रामदयालु सिंह कालेज, मुज़फ़्फ़रपुर
३१. सोमदेव : एक राजनीतिक विचारक (पी-एच० डी०, हिन्दी)	आगरा विश्वविद्यालय १९६४ (अप्रकाशित)	डॉ० पुष्यमित्र जैन, महावीर दि० जैन कालेज, आगरा
३२. भविसयत्तकहा और अपभ्रंश कथाकाव्य (पी-एच० डी०, हिन्दी)	आगरा विश्वविद्यालय १९६४ (अप्रकाशित)	डॉ० देवेन्द्रकुमार शास्त्री, हिन्दी विभाग, राजकीय विज्ञान महाविद्यालय, रायपुर (म० प्र०)
३३. संस्कृत साहित्य को जैन कवियों का योगदान (डी० लिट्०, हिन्दी)	मगध विश्वविद्यालय १९६५ (अप्रकाशित)	डॉ० नेमिचन्द्र शास्त्री, भोला भवन, १, महाजन टोली, आरा (बिहार)
३४. सोमदेवकृत यशस्तिलक का सांस्कृतिक अध्ययन (पी-एच०डी०, हिन्दी)	हिन्दू विश्वविद्यालय (पार्श्वनाथ विद्याश्रम) १९६५ (प्रकाशित)	डॉ० गोकुलचन्द्र जैन, कृष्ण निवास, गुरुबाग, वाराणसी–१

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

३५. कन्नड़ शासनों का सांस्कृतिक अध्ययन (पी-एच० डी०)	मैसूर विश्वविद्यालय, मैसूर (प्रकाशित)	डॉ० चिदानन्द मूर्ति मैसूर विश्वविद्यालय, मैसूर
३६. आचार्य कुन्दकुन्द और उनका समयसार (पी-एच० डी०, हिन्दी)	आगरा विश्वविद्यालय १९६५ (अप्रकाशित)	डॉ० लालबहादुर जैन शास्त्री, २५०।६-बी प्रताप गली, गाँधी नगर, दिल्ली
३७. ए कम्पैरेटिव स्टडी ऑफ़ बुद्धिस्ट विनय एण्ड जैन आचार (अँगरेज़ी, पी-एच० डी०)	बिहार विश्वविद्यालय १९६४-६५ (अप्रकाशित)	डॉ० नन्दकिशोर प्रसाद, सारनाथ (वाराणसी)
३८. ए क्रिटिकल स्टडी ऑफ़ द वर्क्स आफ़ महाकवि रयधू (पी-एच० डी०, हिन्दी)	बिहार विश्वविद्यालय १९६४-६५ (अप्रकाशित)	डॉ० राजाराम जैन, ह०द० जैन कालेज, आरा
३९. जैनिज़्म इन बुद्धिस्ट लिटरेचर (पी-एच०डी०, अँगरेज़ी)	विद्योदय विश्वविद्यालय श्रीलंका, १९६६ (अप्रकाशित)	डॉ० भागचन्द्र जैन, प्राकृत एवं पालि विभाग, नागपुर विश्वविद्यालय, नागपुर
४०. आदिपुराण का सांस्कृतिक अध्ययन (पी-एच० डी०, हिन्दी)	हिन्दू विश्वविद्यालय १९६६ (अप्रकाशित)	डॉ० सिद्धनाथ झा, इंस्टीटयूट आफ़ ओरियंटल फिलासफी, बृन्दाबन (मथुरा)
४१. अपभ्रंश के स्फुट साहित्यिक मुक्तक (पी-एच० डी०, हिन्दी)	बिहार विश्वविद्यालय १९६६-६७ (अप्रकाशित)	डॉ०एन०पी० शर्मा, प्राकृत विद्यापीठ, वैशाली (बिहार)
४२. जिनसेन के हरिवंश-पुराण का आलोचनात्मक अध्ययन (पी-एच० डी०, हिन्दी)	बिहार विश्वविद्यालय १९६६-६७ (अप्रकाशित)	डॉ० सूर्यदेव पाण्डेय, पी० वी० कालेजिएट स्कूल, मुज़फ़्फ़रपुर (बिहार)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

४३. कन्सेप्ट ऑव ओमनी-साइन्स (पी-एच०डी०, अँगरेज़ी)	भागलपुर विश्वविद्यालय १९६७	डॉ० रामजी सिंह
४४. जैनाचार्य रविषेणकृत पद्म-पुराण एवं तुलसीकृत रामचरितमानस का तुलनात्मक अध्ययन (पी-एच० डी०, हिन्दी)	आगरा विश्वविद्यालय १९६७	डॉ० रमाकान्त शुक्ल
४५. जैन और बौद्ध आगमों में नारी-जीवन (पी-एच० डी०, हिन्दी)	हिन्दू विश्वविद्यालय (पार्श्वनाथ विद्याश्रम १९६७ (प्रकाशित)	डॉ० कोमलचन्द्र जैन, संस्कृत विभाग, हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी–५
४६. आचार्य जिनसेनकृत महापुराण के आधार पर ऋषभ तथा भरत के जीवन करित्रों का तुलनात्मक अध्ययन (पी-एच०डी०, हिन्दी)	सागर विद्यालय (अप्रकाशित)	डॉ० नरेन्द्र विद्यार्थी, भूतपूर्व एम० एल० ए० छतरपुर (म० प्र०)
४७. आचारांगसूत्र का समालोचनात्मक अध्ययन (पी-एच० डी०, हिन्दी)	सागर विश्वविद्यालय १९६८ (अप्रकाशित)	डॉ० परमेष्ठीदास जैन, ५५ लक्ष्मीपुरा, सागर
४८. ए क्रिटिकल स्टडी ऑफ़ द लाइफ ऑफ़ जम्बूसामि आन द बेसिस ऑफ़ जंबूसामि चरिउ ऑफ़ वीर (पी-एच०डी०, हिन्दी)	जबलपुर विश्वविद्यालय १९६८ (प्रकाशित)	डॉ० विमलप्रकाश जैन पालि-प्राकृत विभाग, जबलपुर विश्वविद्यालय, जबलपुर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

४९. डाक्ट्रिन ऑव मेटर इन जैनिज़्म (डी.लिट्., अँगरेज़ी)	जबलपुर विश्वविद्यालय १९६८ (अप्रकाशित)	डॉ० जे० सी० सिकदार एल० डी० इन्स्टीट्यूट ऑव इण्डोलॉजी, अहमदाबाद
५०. उत्तराध्ययन सूत्र का समालोचनात्मक अध्ययन (पी-एच० डी०, हिन्दी)	हिन्दू विश्वविद्यालय (पार्श्वनाथ विद्याश्रम) १९६८ (अप्रकाशित)	डॉ० सुदर्शनलाल जैन, संस्कृत विभाग, हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी—५
५१. जैनधर्म में अहिंसा-विचार (पी-एच०डी०, हिन्दी)	हिन्दू विश्वविद्यालय (पार्श्वनाथ विद्याश्रम) १९६८ (अप्रकाशित)	डॉ० वशिष्ठनारायण सिन्हा, पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान, वाराणसी—५
५२. भिक्षु साहित्य का समालोचनात्मक अध्ययन (पी-एच० डी०, हिन्दी)	बिहार विश्वविद्यालय प्राकृत जैन विद्यापीठ १९६८	डॉ० छगनलाल शास्त्री, सरदार शहर (राज०)
५३. जैन तर्कशास्त्र में अनुमान प्रमाण (पी-एच०डी०, हिन्दी)	हिन्दू विश्वविद्यालय १९६८	डॉ० दरबारीलाल कोठिया चमेलीकुटीर, डुमराँव बाग, अस्सी, वाराणसी
५४. मध्यकालीन हिन्दी जैन साहित्य	(वि०सं० १६००-१८००) मगध विश्वविद्यालय	प्रो० गदाधर सिंह हिन्दी विभाग, अनुग्रह-नारायण कालिज, बाढ़ (बिहार)

शोध-कर्त्ता

१. आगरा विश्वविद्यालय

डी० लिट्० के लिए

१. जैन राजनीति (अँगरेज़ी) — डॉ० श्यामसिंह जैन, प्रिंसीपल, के० बी० कालेज, मिर्जापुर (उ० प्र०)

२. आचार्य जिनसेन : व्यक्तित्व एवं कृतित्व — डॉ० राजकुमार जैन, आगरा कालेज, आगरा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

३. हिन्दी के जैन पुराणों की परम्परा का हिन्दी के अन्य पुराणों की तुलना में अध्ययन	डॉ० रवीन्द्रकुमार जैन, हिन्दी विभाग, श्री वेंकटेश्वर विश्वविद्यालय, तिरुपति (आन्ध्र प्रदेश)
४. मध्यकालीन जैन हिन्दी काव्य में रहस्यवाद और उसका तुलनात्मक विवेचन	डॉ० प्रेमसागर जैन, अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, दिगम्बर जैन कालेज, बड़ौत (मेरठ)
५. हिन्दी जैन कवियों का काव्य-शास्त्रीय अध्ययन	डॉ० महेन्द्रसागर प्रचंडिया, वार्ष्णेय कालेज, अलीगढ़
६. आठवीं से दशवीं शताब्दी तक भारतीय राजनीतिक चिन्तनधारा का अध्ययन	डॉ० पुष्यमित्र जैन, जैन कालेज, आगरा

पी-एच० डी० के लिए

७. हिन्दी गद्य साहित्य को जैन लेखकों की देन	श्री चन्द्रपाल शर्मा, म० दि० जैन कालेज, आगरा
८. जैन गणित	श्री हरिश्चन्द्र गर्ग, जैन कालेज, आगरा
९. पं० आशाधर : व्यक्तित्व और कृतित्व	श्री कपूरचन्द जैन, भगवां, छतरपुर (म० प्र०)
१०. पद्मपुराण तथा रविषेणाचार्यकृत पद्मचरित का तुलनात्मक अध्ययन	श्री शिखरचन्द्र जैन, पो० तिजारा, अलवर, (राजस्थान)
११. हेमचन्द्राचार्यकृत त्रिषष्टिशलाका-महापुराण का तुलनात्मक तथा आलोचनात्मक अध्ययन	श्री कुन्दनलाल जैन, ६८ विश्वास रोड, विश्वास नगर, शाहदरा, दिल्ली-३२
१२. धनंजयकृत द्विसन्धान महाकाव्य का तुलनात्मक अध्ययन	श्री शिवदत्त गुप्त, पो० परासिया (छिन्दवाड़ा)
१३. जैन तत्त्व मीमांसा : तुलनात्मक अध्ययन	श्री उदयचन्द्र जैन, संस्कृत महाविद्यालय, वाराणसी—५

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१४. हिन्दी में जैन कथा साहित्य	श्री फूलचन्द जैन, प्राध्यापक, जैन कालेज आगरा (उ० प्र०)
१५. संस्कृत स्तोत्र साहित्य में आचार्य समन्तभद्र का योगदान	श्री गणेशीलाल जैन, महावीर दि० जैन कालेज, आगरा (उ० प्र०)
१६. हिन्दी का जैन पूजा साहित्य	सुश्री कृष्णा वार्ष्णेय, द्वारा—डॉ० महेन्द्र सागर प्रचंडिया, वार्ष्णेय कालेज, अलीगढ़
१७. महाकवि भूधरदास	श्री ब्रजेन्द्र सिंह चौहान, वार्ष्णेय कालेज, अलीगढ़
१८. जैन रास साहित्य	श्री जगवीर किशोर जैन; वार्ष्णेय कालेज, अलीगढ़
१९. हिन्दी में राम विषयक जैन साहित्य	श्री कल्याणचन्द्र जैन, आगरा वि० वि० आगरा
२०. महाकवि स्वयम्भू	श्री संकठा प्रसाद उपाध्याय आगरा वि० वि०, आगरा
२१. महाकवि पुष्पदन्त	श्री राजनारायण पाण्डेय आगरा वि० वि०, आगरा
२२. हिन्दी जैन साहित्य में कृष्ण वार्ता	श्री एम० पी० कोटिया, आगरा वि० वि० आगरा
२३. अपभ्रंश जैन प्रेमाख्यानक काव्य (१००० से १२००)	श्री पारसमल जैन आगरा वि० वि०, आगरा
२४. संस्कृत गद्य साहित्य में गद्य चिन्तामणि का स्थान एवं समीक्षात्मक अध्ययन	पं० भगवतशरण शर्मा, जैन कालिज आगरा
२५. हिन्दी जैन पद साहित्य १५वीं शताब्दी के प्रारम्भ से आधुनिक काल पर्यन्त	श्री गोकलप्रसाद जैन, ५९ रामनगर, नई दिल्ली—१

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

२६. जैन चम्पू काव्य : एक साहित्यिक तथा आलोचनात्मक अध्ययन	श्री जयन्तीप्रसाद जैन कानूनगो मोहल्ला, खतौली, मुज़फ़्फ़रपुर (उ० प्र०)
२७. रीतिकालीन कवियों के हिन्दी प्रबन्ध काव्य	श्री लालचन्द्र जैन, बसवा, जयपुर (राज०)
२८. गणित और ज्योतिष के विकास में जैन कवियों का योगदान	श्री मुकुटविहारी लाल, जैन साहित्य शोध संस्थान हरिपर्वत, आगरा–२
२९. चन्द्रप्रभचरित महाकाव्य : एक अध्ययन	जयदेवी जैन, द्वारा श्री खेमचन्द्र जैन ५४ एफ कमलानगर नई दिल्ली–६

२. इन्दौर विश्वविद्यालय

३०. अपभ्रंश चरित काव्यों में शृंगार भावना	श्रीमती स्नेहलता कासलीवाल, इन्द्र भवन, साउथ तुकोगंज, इन्दौर (म० प्र०)
३१. जैन साहित्य में राम-कथा	श्री अक्षयकुमार जैन, लोधीपुरा २, इन्दौर (म० प्र०)
३२. पुष्पदन्त का कृष्ण और राम-काव्य	सुश्री मेहशी कपूर, कपूर निवास, ३ साउथ तुकोगंज, इन्दौर (म० प्र०)
३३. श्री करकण्डुचरिउ––सन्दर्भ शिल्प और भाषा : एक अध्ययन	श्री धन्नालाल जैन, द्वारा डॉ० डी० के० जैन, ११ उषानगर, इन्दौर (म० प्र०)

३. इलाहाबाद विश्वविद्यालय

३४. धर्मशर्माभ्युदय महाकाव्य का तुलनात्मक और समालोचनात्मक अध्ययन	सुश्री स्वप्ना बनर्जी, संस्कृत विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

४. उदयपुर विश्वविद्यालय

३५. जैन मिस्टिसिज़्म	सुश्री शान्ति जैन, प्लाट नम्बर ४८-ए, नारायण निवास कालोनी, रामबाग रोड, जयपुर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

५. कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय

३६. क्रिटिकल स्टडी आॅव तिलकमंजरी आॅव धनपाल,	श्री एस० के० शर्मा, संस्कृत विभाग कुरुक्षेत्र वि० वि०, कुरुक्षेत्र
३७. कन्सेप्ट आॅव सरस्वती इन वैदिक एण्ड पास्ट वैदिक पीरियड	श्री आर० एन० अैरी, संस्कृत विभाग, कुरुक्षेत्र वि० वि०, कुरुक्षेत्र
३८. कालिदास के नाटकों की प्राकृत भाषाओं का अध्ययन	कु० एस० के० वर्मा, संस्कृत विभाग, कुरुक्षेत्र वि० वि०, कुरुक्षेत्र

६. जबलपुर विश्वविद्यालय

३९. अर्द्धमागधी उपांग साहित्य का आलोचनात्मक अध्ययन	श्री रमेशचन्द्र जैन, सादूल राजस्थानी रिसर्च इंस्टीट्यूट, बीकानेर

७. दिल्ली विश्वविद्यालय

४०. जैन संस्कृत महाकाव्यों (८०० से १४०८ ई०) में रस विवेचन	सुश्री पुष्पा अग्रवाल, १७ ए, कमलानगर, दिल्ली–७

८. धारवाड़ विश्वविद्यालय

४१. श्रवणबेलगोल एण्ड इट्स मोनुमेन्टस्	स० शेट्टर, एम० ए० कर्नाटक विश्व-विद्यालय, धारवाड़
४२. अहिहोल, इट्स हिस्ट्री एण्ड मोनुमेन्टस	स० राजशेखर, एम० ए० कर्नाटक विश्व-विद्यालय, धारवाड़
४३. क्रिटिकल स्टडी आॅफ़ नेमिचन्द्र एण्ड हिज़ वर्क्स	बी० एस० कुलकर्णी, कर्णाटक विश्व-विद्यालय, धारवाड़
४४. गोम्मटेश्वर	सुश्री बी० अन्नपूर्णम्मा, एम० ए० आचार्य पाठशाला कालेज, बसवनगुडि, धारवाड़
४५. अभिनव पम्पकृत जैन रामायण	संगमनाथ, एम० ए०, धारवाड़ विश्वविद्यालय, धारवाड़

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

९. मगध विश्वविद्यालय

४६. संस्कृत नाट्यसाहित्य में जैन नाटककारों का योगदान	श्री रामनाथ पाठक, जैन कालेज, आरा (बिहार)
४७. प्राकृत शिलालेखों का आलोचनात्मक अध्ययन	प्रो० चन्द्रदेव राय, ह० द० जैन कालेज, आरा (बिहार)
४८. रविषेणाचार्यकृत पद्मपुराण का काव्यात्मक तथा सांस्कृतिक अध्ययन	श्री महेन्द्रकुमार जैन, पो० चन्दला ज़िला छतरपुर (म० प्र०)
४९. रूपककार हस्तिमल्ल और उनका नाट्य साहित्य	श्री कन्छेदीलाल जैन, राजकीय संस्कृत कालेज, रायपुर (म० प्र०)

१०. राजस्थान विश्वविद्यालय

५०. १३वीं १४वीं शताब्दी का जैन संस्कृत महाकाव्य	श्री श्यामशंकर दीक्षित, संस्कृत विभाग, राजस्थान वि० वि० जयपुर
५१. प्राकृत और अपभ्रंश, उनका डिंगल साहित्य पर प्रभाव	श्री जी० डी० शर्मा, हिन्दी विभाग राजस्थान वि० वि०, जयपुर
५२. ए कम्पेरेटिव एण्ड क्रिटिकल स्टडी ऑव प्रद्युम्नचरित काव्याज़ विथ स्पेशल रिफरेन्स टू सधारूज़ प्रद्युम्न चरित	श्री मदनगोपाल शर्मा, हिन्दी विभाग राजस्थान वि० वि०, जयपुर
५३. जैन कवियों के ब्रजभाषा प्रबन्ध काव्यों का अध्ययन (वि० सं० १७००–१९००)	श्री एल० सी० जैन, हिन्दी विभाग राजस्थान वि० वि०, जयपुर
५४. महाकवि समयसुन्दर और उनकी राजस्थानी रचनाएँ	श्री एस० एन० स्वामी, हिन्दी विभाग राजस्थान वि० वि०, जयपुर
५५. तेरापन्थी सम्प्रदाय का राजस्थानी और हिन्दी साहित्य	श्री बी० एन० पुरोहित, व्यास, हिन्दी विभाग, राजस्थान वि० वि०, जयपुर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

५६. महाकवि जिनहर्ष : एक अनुशीलन	श्री ईश्वरप्रसाद शर्मा, हिन्दी विभाग, राजस्थान वि० वि०, जयपुर
५७. अपभ्रंश भाषा के विकास क्रम में पश्चिमी राजस्थानी,	श्री जे० पी० कौशिक, हिन्दी विभाग राजस्थान वि० वि०, जयपुर
५८. विक्रम की अठारहवीं शताब्दी का राजस्थानी जैन साहित्य और उसका मूल्यांकन	श्री वसन्तलाल वर्मा, हिन्दी विभाग, राजस्थान वि० वि०, जयपुर
५९. राजस्थानी जैन कवियित्रियाँ	श्रीमती शान्ता भानावत, द्वारा डॉ० नरेन्द्र भानावत, हिन्दी विभाग, जयपुर (राजस्थान)

११. वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय

६०. जैनदर्शने द्रव्यविवेचनम्	श्री मुक्ताराम पटेरया, अनुसन्धान विभाग संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी

१२. विक्रम विश्वविद्यालय

६१. प्राचीन एवं मध्यकालीन मालवा में जैनधर्म : एक अध्ययन	श्री तेजसिंह गौड़, ३७२ प्रेम निवास, गाजीबाड़ा निवास, उज्जैन (म० प्र०)
६२. मध्यप्रदेश और राजस्थान में भट्टारकों का उद्भव और विकास	श्री चम्पालाल सिंघई, अशोकनगर, गुना (म० प्र०)
६३. तिलकमंजरी का आलोचनात्मक अध्ययन	श्री वीरेन्द्रकुमार जैन, पशु चिकित्सालय के सामने, गुना (म० प्र०)
६४. वादीभसिंहसूरि और उनका काव्य	श्री शीलचन्द जैन, २६० तिलकनगर, इन्दौर (म० प्र०)
६५. जैन स्तोत्र साहित्य का आलोचनात्मक अध्ययन	श्री कुलभूषण लोखंडे, द्वारा-संस्कृत विभाग, माधव कालेज, उज्जैन (म० प्र०)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१३. सागर विश्वविद्यालय

६६. मध्यप्रदेश में जैनधर्म का विकास १२०० ई० तक	श्री गोपीलाल अमर, ५७ लक्ष्मीपुरा, सागर (म० प्र०)
६७. देवगढ़ की जैन कला का सांस्कृतिक अध्ययन	श्री भागचन्द्र जैन, महात्मा गान्धी कालेज, इटारसी (म० प्र०)
६८. मध्यप्रदेश के प्राचीन जैन अभिलेखों का अध्ययन	श्री कस्तूरचन्द्र जैन, शा० उ० मा० शाला, पो० लामटा, बालाघाट(म० प्र०)
६९. जैन पुराणों में नारी	श्रीमती आशा मलैया, द्वारा श्री मूलचन्द लक्ष्मीचन्द मलैया, कटरा बाजार, सागर (म० प्र०)

१४. हिन्दू विश्वविद्यालय

७०. अपभ्रंश कथाकाव्यों के शिल्प का हिन्दी प्रेमाख्यानकों के शिल्प पर प्रभाव	श्री प्रेमचन्द्र जैन, पार्श्वनाथ विद्याश्रम, हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी–५
७१. धनपालकृत तिलकमंजरी का आलोचनात्मक अध्ययन	श्री जगन्नाथ पाठक, संस्कृत विभाग, हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी–५
७२. ए कल्चरल स्टडी ऑव निशीथ-चूर्णि	श्रीमती मधु सेन, पार्श्वनाथ विद्याश्रम, वाराणसी–५
७३. आगम साहित्य में जैन आचार	श्री अजित शुकदेव शर्मा, पार्श्वनाथ विद्याश्रम, वाराणसी–५
७४. जैन हिस्टोरियोग्राफी	कुमारी मंजु वर्मा, पार्श्वनाथ विद्याश्रम, वाराणसी–५
७५. पश्चिमी भारत के जैन मन्दिर	श्री हरिहर सिंह, पार्श्वनाथ विद्याश्रम, वाराणसी–५
७६. जैन योग का आलोचनात्मक अध्ययन	श्री अर्हद्दास दिगे, पार्श्वनाथ विद्याश्रम, वाराणसी–५
७७. भारतवर्ष का प्राचीन भूगोल जैन स्रोतों के अनुसार (७०० से १२०० ई० तक)	श्री संकठाप्रसाद, पार्श्वनाथ विद्याश्रम, वाराणसी–५

■ ■

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जैन पत्र-पत्रिकाएँ

१. अनेकान्त : हिन्दी द्वयमासिक, वार्षिक मूल्य ६–००, व्यवस्था दिगम्बर, दृष्टिकोण उदार तथा शोध, सम्पादक डॉक्टर ए० एन० उपाध्ये, डी० लिट्०, डॉ० प्रेमसागर जैन, यशपाल जैन। मुखपत्र समन्तभद्राश्रम, वीर सेवा मन्दिर, दिल्ली। पता—२१, दरियागंज, पो० दिल्ली–६।

२. अमर भारती : हिन्दी मासिक, वार्षिक मूल्य ५–००, व्यवस्था स्थानकवासी, सम्पादक वीरेन्द्रसिंह सकलेचा, एम० ए०, मुखपत्र श्री सन्मति ज्ञानपीठ, आगरा। पता—द्वारा सन्मति ज्ञानपीठ, लोहा मण्डी, आगरा।

३. अमीधारा : गुजराती मासिक, वार्षिक मूल्य ५–००, व्यवस्था मन्दिरमार्गी, दृष्टिकोण वही, सम्पादक मफतलाल संघवी, स्वामी वही। पता—रिसाला बाजार, डीसा (वनसंकठा)।

४. अहिंसा : हिन्दी पाक्षिक, वार्षिक मूल्य ५–००, व्यवस्था दिगम्बर, सम्पादक पण्डित इन्द्रलाल शास्त्री, विद्यालंकार, जयपुर। स्वामी वही। पता—अहिंसा कार्यालय, बोरडी बाजार, जयपुर (राजस्थान)।

५. अहिंसावाणी : हिन्दी मासिक, वार्षिक मूल्य ५–००, व्यवस्था दिगम्बर, दृष्टिकोण समन्वय, सम्पादक वीरेन्द्रप्रसाद जैन आदि, संस्थापक स्व० डॉ० कामताप्रसाद जैन, मुखपत्र अखिल विश्व जैन मिशन। पता—अलीगंज, एटा (उत्तर प्रदेश)।

६. अहिंसा शोधपीठ न्यूज़ लेटर : अँगरेज़ी साप्ताहिक, व्यवस्था स्थानकवासी, दृष्टिकोण अन्तर्राष्ट्रीय, सम्पादक डॉ० बूलचन्द, मुखपत्र अहिंसा शोधपीठ, सन्निधि, राजघाट, नयी दिल्ली। पता—१२ लेडी हार्डिंग रोड, नयी दिल्ली–१।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

७. **आत्मधर्म :** गुजराती मासिक, वार्षिक मूल्य ४–००, व्यवस्था दिगम्बर (आत्मवादी), सम्पादक जगजीवन बावचन्द डोसी, मुखपत्र जैन स्वाध्याय मन्दिर ट्रस्ट। पता—जैन स्वाध्याय मन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ़।

८. **आत्मानन्द प्रकाश :** गुजराती मासिक, व्यवस्था मन्दिरमार्गी, दृष्टिकोण वही, सम्पादक वीरचन्द्र जगजीवन सेठ, स्वामी कल्याण प्रकाशन मन्दिर। पता—भावनगर (सौराष्ट्र)।

९. **ओसवाल :** हिन्दी पाक्षिक, वार्षिक मूल्य ५–००, व्यवस्था ओसवाल, सम्पादक मानमल जैन मार्तण्ड, स्वामी वही, मुखपत्र, ओसवाल समाज। पता—मानमल जैन, कडक्का चौक, अजमेर (राजस्थान)।

१०. **ओसवाल गजट :** उर्दू मासिक, वार्षिक मूल्य ७–६२, व्यवस्था ओसवाल समाज, सम्पादक पूरनचन्द ओसवाल। पता—झुम्बा भाईका (फ़िरोज़पुर)।

११. **कच्छमित्र :** गुजराती साप्ताहिक व दैनिक, वार्षिक मूल्य ६-००, सम्पादक रूपलाल मेहता, स्वामी सौराष्ट्र ट्रस्ट। पता—कच्छमित्र कार्यालय, वाणियावाड, भुज, सौराष्ट्र।

१२. **कच्छी दशा ओसवाल प्रकाश समीक्षा :** गुजराती मासिक, वार्षिक मूल्य ३–००, व्यवस्था मन्दिरमार्गी, सम्पादक सनत् शाह, बी० ए० (आनर्स), एल-एल० बी०, स्वामी प्रकाश समीक्षा समिति, बम्बई। पता—९ केशवजी नायक रोड, बम्बई–९।

१३. **कथाभारती :** गुजराती मासिक, सम्पादक बाबूलाल चुन्नीलाल शाह, स्वामी वही। पता—शान्तिलाल, अमृतलाल, रतनपोल, हाथीखाना, पो० अहमदाबाद।

१४. **कल्याण :** गुजराती मासिक, वार्षिक मूल्य ५–५०, व्यवस्था मन्दिरमार्गी, दृष्टिकोण वही, सम्पादक वीरचन्द्र जगजीवन सेठ, स्वामी : कल्याण प्रकाशन मन्दिर। पता—पो० बढवाण शहर (सौराष्ट्र)।

१५. **गुरुदेव :** कन्नड़ मासिक, वार्षिक मूल्य ३–००, व्यवस्था दिगम्बर, सम्पादक श्री देवेन्द्रकीर्ति स्वामी जी, पो० मूड़बिद्री। पता—गुरुदेव कार्यालय, २५३ पेरालेल रोड, दर्जी गली, पो० शिमोगा (मैसूर)।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१६. **ज्ञान :** हिन्दी मासिक, व्यवस्था दिगम्बर, सम्पादक जैन वैद्य मामनसिंह 'प्रेमी', मुखपत्र, जम्बूकुमार संघ। पता—३५ डिप्टीगंज (महावीर नगर), दिल्ली–६

१७. **ज्योत्स्ना :** गुजराती वार्षिक, सम्पादक नेमिचन्द्र वी० शाह। पता—ओसवाल यूथ लीग, पोस्ट बाक्स नम्बर २३९४, नैरोबी, केन्या (पूर्वी अफ़्रीका)।

१८. **जिनवाणी :** हिन्दी मासिक, वार्षिक, मूल्य ६–००, व्यवस्था, स्थानकवासी, दृष्टिकोण वही, सम्पादक, चम्पालाल कर्णावट आदि, प्रकाशक सम्यग् ज्ञान प्रचारक मण्डल, जयपुर, संस्थापक श्री जैन रत्न विद्यालय, भोपालगढ़, प्रवन्ध सम्पादक, भँवरलाल बोथरा। पता—जिनवाणी कार्यालय, जौहरी वाज़ार, कोटेवालों का रास्ता।

१९. **जैन :** हिन्दी साप्ताहिक, वार्षिक मूल्य ३–००, दृष्टिकोण निरपेक्ष, सम्पादक पन्नालाल नाहटा, मुखपत्र—जैन सभा, कलकत्ता। पता—द्वारा श्री जैन सभा, ७ शम्भू मल्लिक लेन, कलकत्ता–७।

२०. **जैन :** गुजराती साप्ताहिक, वार्षिक मूल्य १०–३०, व्यवस्था मन्दिरमार्गी, दृष्टिकोण उदारमन्दिर मार्गी, सम्पादक सेठ गुलाबचन्द्र देवचन्द, स्वामी वही। पता—बडवा, पो० भावनगर (सौराष्ट्र)।

२१. **जैनोदय :** गुजराती साप्ताहिक, वार्षिक मूल्य १०–००, दृष्टिकोण निरपेक्ष, सम्पादक श्रीकान्त जैन, स्वामी वही। पता—जगजीवन चतुरनी पाल, सुरेन्द्रनगर (सौराष्ट्र)।

२२. **जैन गज़ट :** हिन्दी साप्ताहिक, वार्षिक मूल्य ७–००, व्यवस्था दिगम्बर, दृष्टिकोण वही, सम्पादक पं० लालबहादुर शास्त्री, पता—२५०।६ बी० प्रतापगली, गान्धीनगर, दिल्ली–३१। मुखपत्र, अ० भा० दिगम्बर जैन महासभा। पता—जैन गजट कार्यालय, रंगमहल, अजमेर।

२३. **जैन ज्योति :** हिन्दी त्रैमासिक, वार्षिक मूल्य २–००, सम्पादक प्रकाशमल जैन। पता—जैन ज्योति कार्यालय, गंज, अजमेर।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

२४. **जैन जगत् :** हिन्दी मासिक, वार्षिक मूल्य ४–००, दृष्टिकोण निरपेक्ष, प्रकाशन स्थान पूना—सम्पादक ऋषभदास रांका, लक्ष्मी महल, फ़्लैट नम्बर ६, वामनजी पेतित स्ट्रीट, बम्बई–२६, मुखपत्र भारत जैन महामण्डल। पता—५०५ कालबा देवीरोड, बम्बई–२।

२५. **जैन जर्नल :** अँगरेज़ी मासिक, पता—द्वारा श्री जैन सभा, ७ शम्भूमलिक-लेन, कलकत्ता–७।

२६. **जैन जागरण :** हिन्दी मासिक, सम्पादक जिनेन्द्रकुमार जैन। पता—द्वारा दी राँची प्रिण्टर्स, हिन्द पीढ़ी, राँची (बिहार)।

२७. **जैन दर्शन :** हिन्दी साप्ताहिक, वार्षिक मूल्य ६–००, व्यवस्था दिगम्बर, दृष्टिकोण वही, सम्पादक लालबहादुर शास्त्री, मुखपत्र भारतवर्षीय दिगम्बर जैन सिद्धान्त संरक्षणी सभा। पता—२५०।६ बी० प्रताप गली, गान्धी नगर, दिल्ली–३१।

२८. **जैन धर्म प्रकाश :** गुजराती मासिक, व्यवस्था मन्दिर मार्गी, सम्पादक दीपचन्द जीवनलाल शाह, प्रकाशक जैन धर्म प्रसारक सभा। पता—पो० भावनगर, (सौराष्ट्र)।

२९. **जैन प्रकाश :** हिन्दी साप्ताहिक, वार्षिक मूल्य ७–००, व्यवस्था स्थानकवासी, दृष्टिकोण वही, सम्पादक शान्तिलाल बनमाली सेठ, मुखपत्र अ० भा० श्वे० स्था० जैन कान्फ्रेन्स, दिल्ली। पता—जैन भवन, १२ लेडी हार्डिंग रोड, नयी दिल्ली।

३०. **जैन प्रकाश :** गुज़राती पाक्षिक, वार्षिक मूल्य ७–००, व्यवस्था स्थानकवासी, सम्पादक खीमचन्द मगनलाल बोरा, मुखपत्र, अखिल भारतीय श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन कान्फ़्रेन्स। पता—१ पाचुनी, बम्बई–३, चौथे माले।

३१. **जैन प्रचारक :** हिन्दी मासिक, व्यवस्था दिगम्बर, सम्पादक चन्द्रमौलि जैन शास्त्री, न्यायतीर्थ, मुखपत्र—श्री भा० अनाथ रक्षक जैन सोसायटी। पता—जैन बालाश्रम (अनाथाश्रम), दरियागंज, दिल्ली–६।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

३२. **जैन प्रवचन :** गुजराती साप्ताहिक, व्यवस्था मन्दिर मार्गी, पता—जैन प्रवचन कार्यालय, सेठ श्रीमान् सुखभाई की पोल दवाखाना, मेडापुर कालूपुर, अहमदावाद ।

३३. **जैन बोधक :** मराठी साप्ताहिक, वार्षिक मूल्य ६–००, व्यवस्था, दिगम्बर, सम्पादक पं० वर्धमान पार्श्वनाथ शास्त्री, मुखपत्र श्री धर्मवीर स्व० रावजी सखाराम दोष स्मारक संघ, पता—जैन वोधक कार्यालय, कल्याण भवन, शोलापुर ।

३४. **जैन भारती :** हिन्दी साप्ताहिक तथा मासिक, वार्षिक मूल्य १५–००, व्यवस्था तेरापन्थी श्वेताम्बर, सम्पादक मोहनलाल वांठिया, वच्छराज संचेती, मुखपत्र—जैन श्वेताम्बर तेरापन्थी महासभा, कलकत्ता । पता—३ पोर्चुगीज चर्च स्ट्रीट, कलकत्ता–१ ।

३५. **जैन महिलादर्श :** हिन्दी मासिक, वार्षिक मूल्य ५–००, व्यवस्था दिगम्बर, दृष्टिकोण वही, सम्पादिका ब्र० चन्दाबाई, आरा । प्रकाशक, मूलचन्द किसनदास कापडिया, सूरत । मुखपत्र भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महिला परिषद् । पता—खपाटिया चकला, पो० सूरत ।

३६. **जैन मित्र :** हिन्दी साप्ताहिक, वार्षिक मूल्य ७–००, व्यवस्था दिगम्बर, दृष्टिकोण वही, सम्पादक मूलचन्द किसनदास कापडिया, मुखपत्र दिगम्बर जैन प्रान्तिक सभा, बम्बई । पता—गान्धी चौक, चन्दावाडी, सूरत ।

३७. **जैन शिक्षण साहित्य पत्रिका :** गुजराती मासिक, वार्षिक मूल्य ३–००, व्यवस्था मन्दिर मार्गी, सम्पादक, केशवलाल मोहनलाल शाह, मुखपत्र, श्री जैन धार्मिक शिक्षण संघ, बम्बई । पता—श्री शान्तिनाथ जैन हैहयसर, पामधुनी, बम्बई ।

३८. **जैन संगम :** हिन्दी मासिक, मूल्य ३–००, व्यवस्था दिगम्बर, दृष्टिकोण सर्व जीव समाज, सम्पादक महावीर कांटिया, एम० ए० बी० टी०, ४३१६।३ तोता मोह० अनाजमण्डी, अम्वाला कैण्ट । मुखपत्र पल्लीवाल जैन समाज, जयपुर, पता—द्वारा जुगलकिशोर जैन, एन–७ गणपति नगर, पो० जयपुर ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

३९. **जैन सन्देश :** हिन्दी मासिक तथा त्रैमासिक शोधांक, वार्षिक मूल्य ७–००, व्यवस्था दिगम्बर, दृष्टिकोण वही तथा शोध, सम्पादक पं० कैलाशचन्द्र शास्त्री, जगन्मोहनलाल शास्त्री। मुखपत्र भारतीय दिगम्बर जैन संघ, मथुरा, विशेषता समय-समय पर शोध-अंक प्रकाशन। पता—चौरासी, मथुरा।

४०. **जैन सिद्धान्त :** गुजराती मासिक, वार्षिक मूल्य ५–००, दृष्टिकोण मूर्ति-पूजा समाज, सम्पादक नगीनदास, गिरधरलाल सेठ, स्वामी जैन सिद्धान्त सभा, बम्बई। पता—जैन सिद्धान्त सभा, शान्ति सदन, २५९ लैमिंगटन रोड, बम्बई–७।

४१. **जैन सिद्धान्त भास्कर :** हिन्दी, अँगरेज़ी अर्द्धवार्षिक, वार्षिक मूल्य ६–००, व्यवस्था दिगम्बर, दृष्टिकोण निरपेक्ष-शोध, सम्पादक ज्योतिप्रसाद जैन, नेमिचन्द्र जैन शास्त्री, मुखपत्र देवकुमार जैन ओरियण्टल रिसर्च इंस्टीच्यूट, आरा। पता—जैन सिद्धान्त भवन, आरा (बिहार)।

४२. **जैन सेवक :** गुजराती मासिक, वार्षिक मूल्य २–००, व्यवस्था मन्दिर मार्गी, सम्पादक नटवरलाल एस० शाह, हनुमान् भवन, बीजे मार्ले, २ पीटेट रोड, बम्बई–२, मुखपत्र भारतीय जैन स्वयंसेवक परिषद्, बम्बई। पता—१२ अमर निवास, न्यू चार्नी रोड, बम्बई–४।

४३. **जैसवाल जैन बन्धु :** हिन्दी मासिक, व्यवस्था दिगम्बर, सम्पादक सुमतिचन्द्र जी शास्त्री, स्वामी वही। पता—आदर्श प्रेस, पो० मुरैना (म० प्र०)।

४४. **झालावाड स्थानकवासी जैन सभा पत्रिका :** गुजराती मासिक, वार्षिक मूल्य २–००, तीन वर्ष का ५–००, व्यवस्था झालावाडी स्थानकवासी, सम्पादक खींवचन्द बोहरा, केशवलाल शाह, स्वामी झालावाड स्थानकवासी जैन सभा, बम्बई। पता—झालावाडी स्थानकवासी जैन सभा, ४७ कोलमेट लेन, पहला माला, कालबादेवी रोड, बम्बई–२।

४५. **तरुण जैन :** वार्षिक मूल्य ७–००, हिन्दी साप्ताहिक, व्यवस्था स्थानकवासी, सम्पादक फतेह सिंह जैन, स्वामी वही, संस्थापक स्व० बा० पद्मसिंह जी जैन, पता—महावीर प्रेस, त्रिपोलिया बाजार, पो० जोधपुर।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

४६. **तीर्थंकर :** मराठी पाक्षिक, सम्पादक श्री श्रेणिक अन्नदाते, पता—नामदेव पाटलाची वाडी, डोंबिवली पूर्व, थाणा (महाराष्ट्र)।

४७. **दशाश्रीमाली :** गुजराती पाक्षिक (१ व १५ तारीख) वार्षिक मूल्य ४–००, व्यवस्था दशाश्रीमाली, सम्पादक एम० जे० देसाई, २७ गुरुकुल चेम्बर्स, १८७–९ मुम्बादेवी रोड, बम्बई–२, मुखपत्र श्री सौराष्ट्र दशाश्रीमाली सेवासंघ। पता—सौराष्ट्र दशाश्रीमाली सेवा संघ, रणवीर बिल्डिंग, बिजे माले, ६४ प्रिंसेस स्ट्रीट, बम्बई–२।

४८. **दिगम्बर जैन :** हिन्दी, गुजराती, आवृत्ति मासिक, वार्षिक मूल्य ३–५०, व्यवस्थापक दिगम्बर, सम्पादक मूलचन्द किसनदास कापडिया, स्वामी वही, पता—खपाटी चकला, गान्धी चौक, सूरत।

४९. **दिव्य ज्योति :** हिन्दी मासिक, सम्पादक पं० बलभद्र जैन, पता—दिव्य ज्योति कार्यालय, मोती कटरा, आगरा।

५०. **दिव्यदर्शन :** गुजराती साप्ताहिक, व्यवस्था मन्दिरमार्गी, सम्पादक चतुरदास चिमनदास शाह, पता—दिव्यदर्शन प्रकाशन समिति, पो० वढवान शहर (सौराष्ट्र)।

५१. **दिव्य द्वीप :** गुजराती मासिक, व्यवस्था मन्दिरमार्गी, पता—दिव्य ज्ञान संघ, १३७ सुभाष रोड, बम्बई–१।

५२. **धर्मवाणी :** हिन्दी मासिक, वार्षिक मूल्य १–००, व्यवस्था दिगम्बर समाज, सम्पादक कैलाशचन्द्र जैन, स्वामी वही, पता—मकान नंबर ४१।७६ गामा पुल के पास, चौक लखनऊ।

५३. **पद्मावती पुरवाल :** हिन्दी मासिक, वार्षिक मूल्य ३–००, व्यवस्था दिगम्बर, सम्पादक जुगमन्दिरदास जैन, स्वामी वही, मुखपत्र दिगम्बर जैनों के पद्मावती पुरवाल समाज, पता—१५७ नेताजी सुभाष रोड, कलकत्ता–१।

५४. **प्रगति जिनविजय पत्र :** मराठी साप्ताहिक, वार्षिक मूल्य ५–००, व्यवस्था दिगम्बर, पता—दक्षिण भारत जैन सभा, सांगली (कोल्हापुर)।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सम्पादक वी०वी० मालगवी, कार्यकारी सम्पादक एम०एस० चौगुले, पता—वेलगाँव, मुखपत्र दक्षिण भारत जैन सभा।

५५. **प्रबुद्ध जीवन :** गुजराती पाक्षिक, वार्षिक मूल्य ४–००, व्यवस्था निःसम्प्रदाय, दृष्टिकोण निरपेक्ष, सम्पादक परमानन्द कुँवर जी कापडिया, मुखपत्र—श्री वम्वई जैन युवक संघ, बम्बई, पता—४५।४७ धनजी स्ट्रीट, बम्वई–३।

५६. **बढवाण मित्र मण्डल पत्रिका :** गुजराती पाक्षिक, वार्षिक मूल्य १–००, सम्पादक प्राणलालवीरचन्द वोहरा, संचालक बढवाण मित्र मण्डल, वम्वई, पता—२१४ जगरनिवास, ब्लाक नम्बर १०, शिवं, बम्बई–२२।

५७. **बुद्धिप्रभा (जैन डाइजेस्ट) :** गुजराती मासिक, वार्षिक मूल्य ५–००, व्यवस्था मन्दिर मार्गी, भाडवाडों या भगवान् शाह, १७०।७२ गुलालवाडी, १ माले, वम्वई–४। सम्पादक गुणवंत शाह, स्वामी इन्दिरा गुणवंत शाह। पता—जे० एन० दंताय, १२–१६ तीजो मालो, बम्बई–१२।

५८. **मणिभद्र :** हिन्दी, व्यवस्था मन्दिर मार्गी, तपागच्छ, सम्पादक अज्ञात, मुखपत्र श्री जैन श्वेताम्बर तपागच्छ संघ, पता—घी वालों का रास्ता, आत्मानन्द सभा भवन, जयपुर।

५९. **महावीर शासन :** गुजराती साप्ताहिक, वार्षिक मूल्य ५–००, व्यवस्था मन्दिर मार्गी, सम्पादक मंगललाल चतुर्भुज मेहता, मुखपत्र महावीर शासन प्रकाशन मन्दिर, लाखा बावल। पता—श्री महावीर शासन प्रकाशन मन्दिर, शाक मार्केट के सामने, पो० जामनगर।

६०. **वर्णी प्रवचन :** हिन्दी मासिक, वार्षिक मूल्य १–८०, व्यवस्था दिगम्बर, सम्पादक जितेन्द्रकुमार जैन, द्वारा श्री लाला जोधमल कैलाशचन्द्र जैन, प्रकाशक : वर्णी प्रवचन प्रकाशिनी संस्था, सदर बाज़ार, मेरठ। पता—सुमति प्रसाद जैन, २१–ए दालमण्डी, सदर मेरठ।

६१. **वर्णी सन्देश :** हिन्दी मासिक, वार्षिक मूल्य ३–००, व्यवस्था दिगम्बर, सम्पादक सूरजभान प्रेमी, स्वामी वही, पता—४८७६ धुलियागंज, आगरा।

६२. **वर्द्धमान :** हिन्दी मासिक, दृष्टिकोण निरपेक्ष, सम्पादक दीपचन्द्र जैन, स्वामी वही, पता—२३५५, दिल्ली।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

६३. **वायस आफ़ अहिंसा :** अँगरेज़ी, मासिक, वार्षिक मूल्य ५–००, व्यवस्था दिगम्बर, दृष्टिकोण समन्वय, सम्पादक ज्योतिप्रसाद जैन, वीरेन्द्रप्रसाद जैन आदि। मुखपत्र दि० वर्ल्ड जैन मिशन, पता—पो० अलीगंज, एटा।

६४. **विजयानन्द :** हिन्दी मासिक, वार्षिक मूल्य ३–००, व्यवस्था मन्दिर-मार्गी, सम्पादक पृथ्वीराज जैन, स्वामी श्री आत्मानन्द जैन महासभा, पंजाब, अम्बाला, पता—४११४।२ अम्बाला।

६५. **विश्ववात्सल्य :** गुजराती पाक्षिक, वार्षिक मूल्य ६–००, व्यवस्था स्थानक-वासी, प्रेरक मुनि श्री सन्तलाल जी। पता—विश्व वात्सल्य कार्यालय, हठी-भाई नी वाडी, अहमदावाद।

६६. **वीर :** हिन्दी पाक्षिक, वार्षिक मूल्य ४–००, व्यवस्था दिगम्बर, सम्पादक मुकेश जैन, बनवारीलाल, परमेष्ठीदास, मुखपत्र, श्री अखिल भारतीय दिगम्बर जैन परिषद्। पता—२०४ दरीबाकलां, दिल्ली–६।

६७. **वीरवाणी :** हिन्दी पाक्षिक, वार्षिक मूल्य ४–००, व्यवस्था दिगम्बर, दृष्टिकोण वही, सम्पादक चैनसुखदास न्यायतीर्थ आदि, प्रकाशक भँवरलाल जैन, पता—वीर प्रेस, मनिहारों का रास्ता, पो० जयपुर।

६८. **शाश्वत धर्म :** गुजराती, हिन्दी मासिक, वार्षिक मूल्य ५–००, व्यवस्था मन्दिरमार्गी, प्रकाशन स्थान : द्वारा राजमल लोढा, मन्दसौर, सम्पादक सौभा-ग्यमल सेठिया, संचालक अखिल भारतीय श्री राजेन्द्र जैन नवयुवक परिषद्। पता—महावीर मार्ग, निम्वा हेडा।

६९. **रत्नज्योत :** गुजराती पाक्षिक, वार्षिक मूल्य ३-७५, व्यवस्था स्थानक-वासी, सम्पादक अमृतलाल सवचन्द गोपाणी, मुखपत्र पं० श्री रत्नचन्द्र जी जैन ज्ञान मन्दिर। पता—रत्न ज्योत कार्यालय, सुरेन्द्रनगर (सौराष्ट्र)।

७०. **श्वेताम्बर जैन :** हिन्दी साप्ताहिक, वार्षिक मूल्य ८-००, व्यवस्था मन्दिर मार्गी, सम्पादक जवाहरलाल लोढा। स्वामी वही, पता—१९२५ मोती कटरा, आगरा–३०।

७१. **श्रमण :** हिन्दी मासिक, व्यवस्था स्थानकवासी, दृष्टिकोण वही व शोध, सम्पादक डॉ० मोहनलाल मेहता, पी-एच० डी०, मुखपत्र श्री पार्श्वनाथ

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विद्याश्रम शोध संस्थान, वाराणसी–५। पता—जैनाश्रम, हिन्दूविश्वविद्यालय वाराणसी–५।

७२. **श्रमणोपासक :** हिन्दी पाक्षिक, वार्षिक मूल्य ६–००, व्यवस्था स्थानकवासी, सम्पादक जुगराज सेठिया, देवकुमार जैन, मुखपत्र अ० भारतीय साधुमार्गी जैन संघ। पता—संगडी मुहल्ला, बीकानेर।

७३. **श्री नाकोडा अधिष्ठायक भैरव :** हिन्दी पाक्षिक, व्यवस्था मन्दिर मार्गी, पता—मेवानगर, बालोतरा (राजस्थान)।

७४. **श्रेयोमार्ग :** हिन्दी मासिक, वार्षिक मूल्य ६–००, व्यवस्था दिगम्बर, सम्पादक श्री लाल जैन काव्यतीर्थ। पता—शान्तिवीर जैन सिद्धान्त प्रचारिणी सभा, श्री महावीरजी (राजस्थान)।

७५. **स्थानकवासी जैन :** गुजराती पाक्षिक, वार्षिक मूल्य ५–२५ व्यवस्था स्थानकवासी, दृष्टिकोण वही, सम्पादक जीवनलाल छगनलाल संघवी, स्वामी वही। पता—पंचभाईनी पोल, अहमदाबाद।

७६. **सत्यार्थ :** हिन्दी मासिक, वार्षिक मूल्य २–००, व्यवस्था निरपेक्ष, स्वामी कैलाशचन्द्र जैन। पता—कैलाशचन्द्र जैन पचरत्न, मकान नम्बर ४११।७६ गामा पुल के पास, चौक, लखनऊ–३।

७७. **सन्मति :** मराठी मासिक, वार्षिक मूल्य ६–००, व्यवस्था दिगम्बर, सम्पादक मा० ज० भोसीकर, डॉ० हेमचन्द्र जैन, सुमेर के० जैन, स्वामी श्री बाहुबली ब्रह्मचर्याश्रम, बाहुबली। पता—बाहुबली (कुम्भोज), ज़िला कोल्हापुर।

७८. **सन्मति सन्देश :** हिन्दी मासिक, वार्षिक मूल्य ५–००, व्यवस्था दिगम्बर, दृष्टिकोण वही, सम्पादक प्रकाशहितैषी शास्त्री, स्वामी वही। पता—५३५ गान्धीनगर, दिल्ली–३१।

७९. **सम्यग्दर्शन :** हिन्दी पाक्षिक, वार्षिक मूल्य ६–००, व्यवस्था स्थानकवासी, दृष्टिकोण वही, सम्पादक रतनलाल डोशी, मुखपत्र अ० भा० साधुमार्गी जैन संस्कृति रक्षक संघ। पता—जैन प्रिंटिंग प्रेस, पो० सैलाना (मध्यप्रदेश)।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

८०. **सुघोषा :** गुजराती मासिक, वार्षिक मूल्य ५–५०, व्यवस्था श्वेताम्बर मूर्ति पूजक। सम्पादक श्री सोमचन्द्र डी० शाह। स्वामी वही। पता—जीवन निवास सामे, पो० पालीताना (सौराष्ट्र)।

८१. **सुधर्मा :** हिन्दी मासिक, वार्षिक मूल्य ६–००, व्यवस्था स्थानकवासी, दृष्टिकोण वही, सम्पादक शोभाचन्द भारिल्ल आदि। मुखपत्र श्री तिलोकरत्न स्थानकवासी, जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड। पता—८३२ जून बाज़ार पाथर्डी (अहमदनगर)।

८२. **सेवा समाज :** गुजराती साप्ताहिक, वार्षिक मूल्य ८–००, व्यवस्था मन्दिर-मार्गी, सम्पादिका प्रमिला ओसवाल, स्वामी वही। पता—१३९ एस्प्लेनेड मैंशन, फुलर रोड, बम्बई–३१।

८३. **हितमितपथ्यसत्यम् :** गुजराती मासिक, वार्षिक मूल्य ३–००, व्यवस्था मन्दिरमार्गी, सम्पादक अरविन्द एम० पारेख, स्वामी वही। पता—१ कृष्ण गली, स्वदेशी मार्केट, कालवादेवी रोड, बम्बई–२।

८४. **हिंसा विरोध :** हिन्दी मासिक, वार्षिक मूल्य २–००, व्यवस्था मन्दिर-मार्गी, सम्पादक बाला भाई गिरधरलाल शाह, मुखपत्र हिंसा विरोधक संघ। पता—अहिंसा भवन, नगर रोड का बण्डा, अहमदाबाद।

अन्य भारतीय तथा विदेशी पत्रिकाएँ (जिन में जैन-वाङ्मय और संस्कृति-विषयक लेख प्रकाशित होते रहते हैं या हो सकते हैं।)

१. **अनुशीलन :** हिन्दी त्रैमासिक, हिन्दी परिषद्, इलाहाबाद (उ० प्र०)
२. **नागरी प्रचारिणी पत्रिका :** हिन्दी त्रैमासिक, नागरी प्रचारिणी सभा, विश्वेश्वर गंज, वाराणसी–१
३. **परिषद् पत्रिका :** हिन्दी त्रैमासिक, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना (बिहार)
४. **राजस्थान भारती :** हिन्दी त्रैमासिक, सादूल राजस्थानी रिसर्च इन्स्टिटयूट, बीकानेर (राजस्थान)
५. **विश्वभारती पत्रिका :** हिन्दी त्रैमासिक, हिन्दी भवन, शान्तिनिकेतन (बंगाल)।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

६. सम्मेलन पत्रिका : हिन्दी त्रैमासिक, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग (उ० प्र०)
७. संस्कृति : हिन्दी मासिक, शिक्षा मन्त्रालय, भारत सरकार, नयी दिल्ली ।
८. हिन्दुस्तानी : हिन्दो त्रैमासिक, हिन्दुस्तानी ऐकेडेमी, इलाहाबाद (उ० प्र०)

अँगरेजी पत्रिकाएँ (भारतीय)

1. Indian Historical Quarterly, 9, Panchanana Ghosh Lane, Calcutta
2. Journal of the Oriental Research, Oriental Institute, Baroda
3. Vishveshvaranand Indological Institute Journal, Sadhu Ashram, Hoshiarpur

विदेशी पत्रिकाएँ

1. Bulletin of the School of Oriental and African Studies, University of London, LONDON, England
2. Indologisches Institut der Universitat Wien, Wien I, Reitschulgasse 2, Osterreich (Austria)
3. Journal Asiatique, Societe Asiatique, Rue Mazarine, No. 3 Paris (VIe)
4. Journal of the Royal Asiatic Society of Great Britain and Ireland, 56 Queen Anne Street, London W 1 (England)
5. Journal of the American Oriental Studies, 329 Sterling Memorial Library, Yale Station, New Haven, Connecticut. (U.S.A.)
6. Qeitshhrift der Deutschen Morgenlandischen Gesellschaft, Kommissionsverlag Frauz Steiner Gybh Wiesbaden (West Germany)
7. University of Ceylon Review, The Ceylon University press, Colombo, Ceylon

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

संस्थाएँ और साहित्य

माणिकचन्द्र जैन ग्रन्थमाला

जैसा नाम से व्यक्त है, इस ग्रन्थमाला की स्थापना स्वर्गीय सेठ माणिकचन्द्र हीराचन्द्र जी जौहरी की पुण्य स्मृति में विक्रम संवत् १७९२ में की गयी थी। जौहरी जी जितने बड़े धनी थे उतने ही बड़े उदारचेता और सांस्कृतिक रुचि के व्यक्ति भी थे। उन्होंने अपने जीवनकाल में बोर्डिङ्-हाउस, विद्यालय, छात्रवृत्ति फण्ड, परीक्षालय, श्राविकाश्रम आदि संस्थाओं की स्थापना की थी। माणिक चन्द्र ग्रन्थमाला तो उन की सामाजिक और सांस्कृतिक अभिरुचि और उपलब्धियों की स्मृति में उन के आत्मीय जनों ने ग्रन्थमाला स्थापित की। ग्रन्थमाला के कुशल सूत्रधार स्व० पण्डित नाथूराम जी 'प्रेमी' के संचालन में ग्रन्थमाला ने छियालीस ग्रन्थ प्रकाशित किये तथा उन का मूल्य लागत मात्र रखा।

जैन साहित्य के अमूल्य अनुपलब्ध ग्रन्थों को प्रकाश में लाने का प्रथम श्रेय माणिकचन्द्र ग्रन्थमाला को है। आज से लगभग अर्ध शताब्दी पूर्व इस तरह के कार्य का प्रारम्भ करना निहायत कठिन था। संस्था की प्रबन्धकारणी तथा संचालकों के स्वर्गवास के बाद माणिकचन्द्र ग्रन्थमाला अब भारतीय ज्ञानपीठ-द्वारा संचालित है।

ज्ञानपीठ के नये संरक्षण में इस ग्रन्थमाला के अन्तर्गत चार ग्रन्थ और प्रकाशित हुए हैं—(१) प्रमाणप्रमेयकलिका, (२) जैन शिलालेख संग्रह भाग ४, (३) आराधनासमुच्चयो योगसारसंग्रहश्च (एक जिल्द में)। ग्रन्थमाला द्वारा प्रकाशित साहित्य इस प्रकार है—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१	लघीयस्त्रयादिसंग्रह	.३१
२	सागारधर्मामृत	.४४
३	विक्रान्तकौरव	.३७
४	पार्श्वनाथ चरित	.५०
५	मैथिलीकल्याण	.२५
६	आराधनासार	.२८
७	जिनदत्तचरित	.२८
८	प्रद्युम्नचरित	.५०
९	प्रमाणनिर्णय	.३१
१०	आचारसार	.३७
११	चारित्रसार	.३७
१२	त्रिलोकसार	१.७५
१३	तत्त्वानुशासनादिसंग्रह	.८७
१४	अनगारधर्मामृत	३.५०
१५	युक्त्यनुशासन	.८१
१६	नयचक्रसंग्रह	.९४
१७	षट्प्राभृतादिसंग्रह	३.००
१८	प्रायश्चित्तसंग्रह	१.१२
१९	मूलाचार (पूर्वार्ध)	२.५०
२०	भावसंग्रहादि [प्राकृत-संस्कृत]	२.२५
२१	सिद्धान्तसारादि [प्राकृत-संस्कृत]	१.५०
२२	नीतिवाक्यामृत	१.७५
२३	मूलाचार उत्तरार्ध	१.५०

संस्थाएँ और साहित्य ४९

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

२४	रत्नकरण्डश्रावकाचार [संस्कृत]	२.००
२५	पंचसंग्रह [संस्कृत]	०.८१
२६	लाटी संहिता [संस्कृत]	०.५०
२७	पुरुदेवचम्पू [संस्कृत]	०.७५
२८	जैन शिलालेख संग्रह [संस्कृत-प्राकृत-हिन्दी]	२.००
२९	पद्मचरित [संस्कृत] भाग १	१.५०
३०	पद्मचरित [संस्कृत] भाग २	२.००
३१	पद्मचरित [संस्कृत] भाग ३	२.००
३२	हरिवंशपुराण [संस्कृत] भाग १	२.००
३३	हरिवंशपुराण [संस्कृत] भाग २	१.५०
३४	नीतिवाक्यामृत (परिशिष्ट)	०.२५
३५	जम्बूस्वामीचरित [संस्कृत]	१.५०
३६	त्रिषष्टिस्मृतिसार [संस्कृत-मराठी अनुवाद]	०.५०
३७	महापुराण [आदिपुराण] अपभ्रंश : भाग १	१०.००
	रामायण (अलग से)	२.५०
३८	न्यायकुमुदचन्द्र [संस्कृत] भाग १	८.००
३९	न्यायकुमुदचन्द्र [संस्कृत] भाग २	८.५०
४०	वरांगचरित [संस्कृत]	३.००
४१	महापुराण [उत्तरपुराण] अपभ्रंश : भाग २	१०.००
४२	महापुराण [उत्तरपुराण] अपभ्रंश : भाग ३	६.००
४३	अंजनापवनंजय और सुभद्रा नाटक [संस्कृत]	३.००
४४	स्याद्वादसिद्धि [संस्कृत]	१.५०
४५	जैन शिलालेख संग्रह २ [संस्कृत-प्राकृत-हिन्दी]	८.००
४६	जैन शिलालेख संग्रह ३ [संस्कृत-प्राकृत-हिन्दी]	१०.००
४७	प्रमाणप्रमेयकलिका [संस्कृत]	१.५०
४८	जैन शिलालेख	४.००
४९	आराधनासमुच्चयो योगसारसंग्रहश्च	१.००

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वीर सेवा मन्दिर

२१, दरिया गंज, दिल्ली—६

प्राचीन जैन साहित्य के अनुसन्धान और प्रकाशन के उद्देश्य से सन् १९२९ में पं० जुगल किशोर जी मुख्तार द्वारा संस्थापित।

१.	पुरातन-जैनवाक्य-सूची	१५-००
२.	आप्त परीक्षा	८.००
३.	स्वयम्भूस्तोत्र	२-००
४.	स्तुतिविद्या	१-५०
५.	अध्यात्मकमलमार्तण्ड	१-५०
६.	युक्त्यनुशासन	·७५
७.	श्रीपुरपार्श्वनाथस्तोत्र	·७५
८.	शासनचतुस्त्रिंशिका	·७५
९.	समीचीन धर्मशास्त्र	३-००
१०.	जैनग्रन्थ-प्रशस्ति संग्रह भा० १	४-००
११.	समाधितन्त्र और इष्टोपदेश	४-००
१२.	अनित्यभावना	·२५
१३.	तत्त्वार्थसूत्र—(प्रभाचन्द्रीय)	·२५
१४.	श्रवणबेलगोल और दक्षिण के अन्य जैनतीर्थ	१-२५
१५.	महावीर का सर्वोदय तीर्थ ·१९ पैसे, (५) समन्तभद्र विचार-दीपिका ·१९ पैसे, (६) महावीर पूजा	·२५
१६.	बाहुबली पूजा—जुगलकिशोर मुख्तार कृत (समाप्त)	·२५

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१७. अध्यात्म रहस्य १-००

१८. जैनग्रन्थ-प्रशस्ति संग्रह भा २ १२-००

१९. Reality आ० पूज्यपाद की सर्वार्थसिद्धि का अँगरेज़ी में अनुवाद
बड़े आकार के ३०० पृ. पक्की जिल्द ६-००

प्राकृत टेक्स्ट सोसाइटी

प्राकृत साहित्य के अध्ययन-अनुसन्धान और प्रकाशन के उद्देश्य से भारत सरकार तथा प्रान्तीय सरकारों के अनुदान से सन् १९५२ में संस्थापित।

प्रकाशित साहित्य

१. अंगविज्जा : सम्पा० मुनि पुण्यविजय २१.००

२. प्राकृत पैंगलम् : सम्पा० डॉ० भोलाशंकर व्यास १६.००

३. चउप्पन्नमहापुरिसचरियं : सम्पा० अमृत लाल मोहन लाल २१.००

आयोजित

१. नन्दिसूत्र (जिनदासकृतचूर्णि सहित) : सम्पा० मुनि पुण्यविजय

२. नन्दिसूत्र (हरिभद्रीयटीका सहित) : सम्पा० मुनि पुण्यविजय

३. पउमचरियं : विमलसूरि, सम्पा० मुनि पुण्यविजय

४. सूत्रकृतांग : सम्पा० मुनि पुण्यविजय

५. दसकालियसुत्त : सम्पा० मुनि पुण्यविजय

६. पासनाहचरिउ : सम्पा० पी० के० मोदी

दि० जैन संघ, मथुरा

चौरासी, मथुरा (उ. प्र.)

१. वरांगचरित ७.००

२. रामचरित ४.००

३. जैनधर्म ४.००

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

५. ईश्वर मीमांसा	६.००
६. द्रव्यसंग्रह	१.५०
७. छहढाला	२.००
८. सत्यार्थदर्पण	२.००
९. तत्त्वार्थसूत्र	२.५०
१० वर्णी अभिनन्दन ग्रन्थ	१५.००
११. जयधवला ९ भाग	प्रत्येक १५.००
१२. मोक्षमार्ग प्रकाशक (हिन्दी)	
१३. रिलीजन एण्ड पीस (अँगरेज़ी)	

आयोजित

जयधवला शेष ६ भाग

अम्बादास चवरे दि० जैन ग्रन्थमाला

(कारंजा जैन सीरीज)

१. जसहर चरिउ : सं. डॉ० पी. एल. वैद्य	६.००
२. णायकुमार चरिउ : सं. डॉ० हीरालाल जैन	६.००
३. सावयधम्म दोहा : सं. डॉ० हीरालाल जैन	२.५०
४. पाहुड दोहा : सं. डॉ० हीरालाल जैन	२.५०
५. करकंडचरिउ : सं. डॉ० हीरालाल जैन	६.००

ज्ञानसागर ग्रन्थमाला

पता—गणेशीलाल रतनलाल कटारिया, ब्यावर, (राजस्थान)

१. वीरोदय	६.००
२. सुदर्शनोदय	२.५०
३. दयोदय	१.५०

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

परमश्रुत प्रभावक मण्डल

श्रीमद्राजचन्द्र आश्रम, अगास, पो० बोरिया, बाया आणंद (W. R.)

विक्रम संवत् १९५६ में श्रीमद्रायचन्द्र जी ने परमश्रुत के प्रचारार्थ एक सुन्दर योजना बनायी और तदनुसार परमश्रुत प्रभावक मण्डल की स्थापना हुई। रायचन्द्र जैन ग्रन्थमाला इसी मण्डल के द्वारा संचालित है। इस ग्रन्थमाला में अब तक निम्नलिखित साहित्य प्रकाशित हो चुका है—

१. श्रीमद्राजचन्द्र : कविवर रायचन्द्र जी, अनु० जगदीशचन्द्र जैन १०.००
*२. उपदेशछाया और आत्मसिद्धि : राजचन्द्र जी, अनु० जगदीशचन्द्र जैन ००.५०
३. पुष्पमाला मोक्षमाला और भावनाबोध : राजचन्द्र, जी, अनु० जगदीशचन्द्र जैन १.५०
४. परमात्मप्रकाश और योगसार : योगीन्दुदेव, डॉ० आ० ने० उपाध्ये ९.००
*५. योगसार : श्री योगीन्दुदेव, डॉ० आ० ने० उपाध्ये ०.२५
*६. योगीन्दुदेव और उनकी रचनाएँ : डॉ० आ० ने० उपाध्ये १.००
७. प्रवचनसार : श्री कुन्दकुन्दाचार्य, डॉ० आ० ने० उपाध्ये १५००
*८. स्याद्वादमंजरी : श्री हेमचन्द्राचार्य, अनु० जगदीशचन्द्र जैन ४.५०
९. सभाष्यतत्त्वार्थाधिगमसूत्र : श्री उमास्वाति, पं० खूबचन्द्र जी की भाषा टीका सहित ३.००
१०. पुरुषार्थसिद्ध्युपाय : अमृतचन्द्र स्वामी, भाषा टीका, पं० नाथूराम प्रेमी २.००
११. ज्ञानार्णव : श्री शुभचन्द्राचार्य, हिन्दी टीका, पं पन्नालाल बाकलीवाल ७.००
*१२. सप्तभंगीतरंगिणी : श्रीमद्विमलदास, भाषाटीका पं० ठाकुरप्रसाद शर्मा १.००
*१३. वृहद्द्रव्यसंग्रह : श्री नेमिचन्द्राचार्य, श्रीब्रह्मदेवसूरि कृत संस्कृत टीका व पं० जवाहरलाल जी शास्त्री कृत भाषाटीका २.२५

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

*१४. गोम्मटसार कर्मकाण्ड : श्री नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती टीका : पं० मनोहर-लाल जी शास्त्री २.५०

१५. गोम्मटसार जीवकाण्ड : ,, टीका पं० खूबचन्द्र सिद्धान्तशास्त्री ६.००

*१६. लब्धिसार : ,, टीका पं० मनोहर लाल जी शास्त्री १.५०

१७ स्वामीकार्तिकेयानुप्रेक्षा : शुभचन्द्र, सं० डॉ० आ. ने. उपाध्ये १४.००

१८. न्यायावतार : सिद्धसेन, सं० विजयमूर्ति १०.००

१९. प्रशमरतिप्रकरण : ६.००

२०. इष्टोपदेश : देवनन्दि, सं० पं० धन्यकुमार जैन १.५०

श्री जैन सिद्धान्त-भवन
आरा (बिहार)

इस संस्था की स्थापना स्वर्गीय श्री बाबू देवकुमार जैन रईस, आरा ने जैन पुरातत्त्व के संरक्षण के हेतु सन् १९०३ में की थी। "देवकुमार जैन ट्रस्ट" द्वारा इस भवन का संचालन होता है। आरा शहर के मध्य में स्थित इस विशाल भवन में संस्कृत, प्राकृत, पालि, अँगरेज़ी, गुजराती, मराठी, कन्नड़, तामिल, तेलगू आदि विभिन्न भारतीय एवं विदेशी भाषाओं के दर्शन, धर्म, आचार, साहित्य, व्याकरण प्रभृति विषयों के लगभग ९००० नौ हजार प्रकाशित और लगभग ७००० सात हजार हस्तलिखित ग्रन्थों का दुर्लभ संग्रह है। संस्थाधिकारियों ने उत्तर भारत से दक्षिण भारत तक योग्य व्यक्तियों को भेज कर प्रचुर द्रव्य व्यय-द्वारा पाण्डुलिपियों का संकलन कराया था। लगातार दस बारह वर्षों तक अथक श्रम करने पर १७०६ एक हजार सात सौ छह ताड़पत्र पर लिखे गये ग्रन्थ और लगभग ३५०० तीन हजार पाँच सौ कागज पर लिखी गयी

*चिह्नित ग्रन्थ अप्राप्य हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पाण्डुलिपियों का संकलन किया गया। जिनमें से अधिकांश का लिपिकाल पन्द्रहवीं तथा सोलहवीं शताब्दी है। ग्रन्थों का संकलन देश में कई स्थानों पर सुलभ है, पर हस्तलिखित पुरातन बहुमूल्य जैन ग्रन्थों का ऐसा मूल्यवान संग्रह उत्तर भारत में शायद ही अन्यत्र हो।

सचित्र ग्रन्थ एवं अन्य हस्तलिखित चित्रों का संग्रह भी भवन ने करने की व्यवस्था की है। फलतः सचित्र जैनरामायण, सचित्र भक्तामर एवं कई बहुमूल्य चित्र संकलित किये गये हैं। सचित्र रामायण में १६-१७ वीं शताब्दी की मुग़ल और राजपूत कला का मिश्रण अद्भुत गंगा-जमुनी प्रवाह अभिव्यञ्जित करता है। इस ग्रन्थ में लगभग २०० दो सौ पृष्ठ हैं। प्रत्येक पृष्ठ पर जितना कथानक है, उस की अभिव्यंजना के लिए वहाँ चित्र भी दिये गये हैं। इतना ही नहीं, पृष्ठों के अंक भी चित्र-द्वारा अंकित किये गये हैं। सचित्र भक्तामर में ४८ काव्यों के भावों की अभिव्यंजना के लिए ४८ चित्र अंकित किये गये हैं।

"जैन चित्र संग्रह" में पौराणिक एवं ऐतिहासिक मान्यताओं को अभिव्यक्त करने वाले लगभग ५० चित्र हैं। चित्रकला की दृष्टि से चन्द्रगुप्त के १६ स्वप्न, तीर्थंकर की माता के १६ स्वप्न, पावापुरी का जलमन्दिर आदि चित्र भी कम भव्य नहीं हैं।

भारतीय प्राचीन कतिपय सिक्के भी इस भवन में संग्रहीत हैं।

भवन की ओर से बहुमूल्य एवं उपयोगी ग्रन्थों के प्रकाशन के साथ श्री जैन-सिद्धान्त-भास्कर (The Jain Antiquary) नामक शोध पत्रिका का प्रकाशन सन् १९३५ से होता आ रहा है।

प्रकाशित साहित्य

१. मुनिसुव्रतकाव्य (चरित्र) संस्कृत और भाषा टीका सहित
   सं० पं० के० भुजबली शास्त्री एवं पं० हरनाथ द्विवेदी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

२. ज्ञान प्रदीपिका तथा सामुद्रिकशास्त्र, भाषा टीका सहित
सं० प्रो० रामव्यास पाण्डेय, ज्योतिषाचार्य

३. प्रतिमा लेखसंग्रह
सं० बाबू कामता प्रसाद जैन M.R.A.S.

४. प्रशस्ति संग्रह (प्रथम भाग)
सं० पं० के भुजवली शास्त्री विद्याभूषण

५. वैद्यसार
सं० पं० सत्यंधर आयुर्वेदाचार्य काव्यतीर्थ

६. तिलोय पण्णत्ति (प्रथम भाग)
सं० डॉ० ए० एन० उपाध्ये

७. JAINA LITERATURE IN TAMIL
By Pro. A. Chakravarti. M. A. I. E. S.

८. श्री जैन सिद्धान्त एण्ड जैन एण्टीक्योरी

जैन संस्कृति संरक्षक संघ

सन्तोष भवन, फलटन गली, सोलापुर (महाराष्ट्र)

सोलापुर निवासी ब्रह्मचारी जीवराज गौतमचन्द्र जी दोशी ने सन् १९४१ में तीर्थक्षेत्र गजपन्था (नासिक) में एक विद्वत् सम्मेलन का आयोजन किया और उसी अवसर पर जैन संस्कृति तथा साहित्य के संरक्षण, उद्धार और प्रचार के हेतु जैन संस्कृति संरक्षक संघ की स्थापना की। इसी संघ-द्वारा जीवराज जैन ग्रन्थमाला का संचालन हो रहा है। इस ग्रन्थमाला के अन्तर्गत प्राचीन जैन साहित्य के अनेक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ तथा विशिष्ट अध्ययन ग्रन्थ प्रकाशित हुए हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रकाशित ग्रन्थ

१.	तिलोयपण्णत्ति भाग १	१६.००
२.	तिलोयपण्णत्ति भाग २	१६.००
३.	यशस्तिलक एण्ड इण्डियन कल्चर	१६.००
४.	पाण्डवपुराण (शुभचन्द्रकृत)	१२.००
५.	प्राकृतशब्दानुशासनम् (त्रिविक्रम)	१०.००
६.	सिद्धान्तसारसंग्रह (नरेन्द्रसेन)	१०.००
७.	जैनिज़्म इन साउथ इण्डिया एण्ड सम जैन एपिग्राफस	१६.००
८.	जंबूदीवपण्णत्तिसंगहो (पद्मनन्दी)	१६.००
९.	भट्टारकसम्प्रदाय	१८.००
१०.	प्राभृतादिसंग्रह	६.००
११.	पद्मनन्दिपंचविंशतिका	१०.००
१२.	आत्मानुशासन (गुणभद्र)	६.००
१३.	लोकविभाग	१०.००
१४.	गणितसारसंग्रह	१२.००
१५.	पुण्यास्रवकथाकोशम्	१०.००
१६.	जैनिज़्म इन राजस्थान	११.००
१७.	विश्वतत्त्वप्रकाश	१२.००

प्रकाश्य

१. सुभाषितसंदोह
२. ज्ञानार्णव
३. धर्मपरीक्षा
४. धर्मरत्नाकर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

५. तीर्थवन्दनमाला
६. चन्द्रप्रभचरित्र

सिंघी जैन ग्रन्थमाला

भारती विद्याभवन, चौपाटी, बम्बई

श्री बहादुर सिंह सिंघी ने अपने स्वर्गीय पूज्य पिता श्रीडालचन्द्र सिंघी की स्मृति में सन् १९३१ के प्रारम्भ में शान्तिनिकेतन में सिंघी जैन ज्ञानपीठ की स्थापना की और उसी के साथ सिंघी जैन ग्रन्थमाला के प्रकाशन की योजना वनी। भारतीय विद्या भवनकी स्थापना के बाद इस ग्रन्थमाला को संवत् १९९९ (सन् १९४२) में भवन के साथ सम्बद्ध कर दिया गया। मुनि जिनविजय जी के निर्देशन और प्रधान सम्पादकत्व में संचालित इस ग्रन्थमाला में प्राचीन जैन साहित्य के दुर्लभ और महत्त्वपूर्ण अड़तालीस ग्रन्थ अव तक प्रकाशित हो चुके हैं।

*१. प्रवन्धचिन्तामणि : मेरुतुंग : सम्पादक मुनि जिनविजय	६.५०
२. पुरातनप्रवन्धसंग्रह : सम्पादक ,,	८.५०
३. प्रवन्धचिन्तामणि (हिन्दी अनुवाद) : अनुवाद पं० हजारीप्रसाद द्विवेदी	६.००
४. धर्माभ्युदय महाकाव्य : उदयप्रभ : सम्पादक मुनि पुण्यविजय	८.५०
५. प्रबन्धकोश : राजशेखर सूरि, सं० मुनि जिनविजय,	६.५०
*६. देवानन्द महाकाव्य : मेघविजय, सं० पं० बेचरदास दोशी	४.५०
७. जैन तर्कभाषा : यशोविजय, सं० पं० सुखलाल संघवी	३.५०
८. प्रमाणमीमांसा : हेमचन्द्र सं० पं० सुखलाल संघवी	८.५०
९. विविधतीर्थकल्प : जिनप्रभ सूरि, सं० मुनि जिनविजय	६.५०
१०. कथाकोशप्रकरण : जिनेश्वर सूरि : सं० मुनि जिनविजय	१२.५०
११. अकलंकग्रन्थत्रय : अकलंक, सं० पं० महेन्द्रकुमार	८.५०
१२. प्रभावकचरित : प्रभाचन्द्राचार्य, सं० मुनि जिनविजय	८.००

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१३.	दिग्विजयमहाकाव्य : मेघविजय, सं० पं० ए० पी० शाह	८.००
*१४.	भानुचन्द्रचरित्र : सिद्धिचन्द्र, सं०-एम० डी० देसाई	८.००
*१५.	ज्ञानबिन्दुप्रकरण : यशोविजय, सं०-पं० सुखलाल संघवी	५.००
*१६.	बृहत् कथाकोश : हरिषेण, सं० डॉ० ए० एन० उपाध्ये	१६.००
१७.	जैनपुस्तक प्रशस्ति संग्रह : सं० मुनि जिनविजय	१०.००
*१८.	धूर्ताख्यान : हरिभद्र, सं० मुनि जिनविजय	८.००
१९.	न्यायावतारवार्तिकवृत्ति : शान्तिसूरि, सं० पं० दलसुख मालवनिया	१६.००
२०.	रिष्टसमुच्चय : दुर्गदेव, सं० डॉ० ए० एस० गोपानी	१०.००
२१.	संदेशरासक : अब्दुल रहमान, सं० मुनि जिनविजय	१०.००
२२.	शतकत्रयादि सुभाषित संग्रह : भर्तृहरि, सं० डी० डी० कौशाम्बी	१२.५०
२३.	पउमसिरीचरिउ : धाहिल, सं० एम० सी० मोदी, भायाणी	४.७५
२४.	णाणपंचमीकहाओ : महेश्वर, सं० ए० एस० गोपानी	७.७५
२५.	भद्रबाहु संहिता : भद्रबाहु, सं० ए० एस० गोपानी	५.७५
२६.	जिनदत्ताख्यानद्वय : सुमतिसूरि, सं० पं० ए० एम० भोजक	३.५०
२७.	धर्मोपदेशमाला विवरण : जयसिंह सूरि, सं० पं० एल. वी० गान्धी	९.७५
२८.	लीलावई कहा : कोउहल, सं० डॉ० ए० एन० उपाध्ये,	२५.००
२९.	लिटरेरी सरकिल आफ महामात्य वास्तुपाल एण्ड इट्स कन्ट्रीब्यूशन टू संस्कृत लिटरेचर : बी० जे० सन्देसरा	९.५०
३०.	नाममायासुन्दरी कहा : महेन्द्रसूरि	४.५०
३१.	कुवलयमाला कहा संक्षेप : रत्नप्रभ	५.५०
३२.	शृंगारमंजरी कथा : भोजदेव	१२.००
३३.	अर्थशास्त्र :: कौटिल्य	४.४०
३४.	छन्दोनुशासन : हेमचन्द्र	१४.४०

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

३५. विज्ञप्तिलेख संग्रह : सं० मुनि जिनविजय १०.५०
३६. सुकृतकीर्तिकल्लोलिनी आदि वास्तुपाल प्रशस्ति संग्रहः मुनि जिन-विजय ६.६०
३७. पउमचरिउ : स्वयंभू, सं० डॉ० एच० सी० भायाणी १२.५०
*३८. स्टडीज़ इन इण्डियन लिटरेरी हिस्ट्री (दो भाग) : डॉ० पी० के० गुणे २०.०० प्रत्येक
३९. उक्तिव्यक्ति प्रकरण : दामोदर, सं० चटर्जी तथा मोतीचन्द्र ८.००
४०. काव्यप्रकाश खण्डन : सिद्धिचन्द्रगणि, सं० प्रो० आ० सी० परिख ४.५०
४१. कुमारपाल चरित संग्रह : सं० मुनि जिनविजय १०.००
*४२. लाइफ आफ हेमचन्द्राचार्य : डॉ० बुलनर, अं० मणिलाल पटेल ५.००
४३. खरतरगच्छबृहद्गुर्वावलि : जिनपाल, सं० मुनि जिनविजय ८.५०
४४. कुवलयमाला : उद्योतनसूरि : सं० डॉ० ए० एन० उपाध्ये १२.००
४५. कीर्तिकौमुदी महाकाव्य : सोमेश्वर, सं० मुनि जिनविजय ६.६०

पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान
हिन्दूविश्वविद्यालय, वाराणसी–५

पार्श्वनाथ विद्याश्रम की स्थापना सन् १९३७ में हुई थी। इस का संचालन सोहनलाल जैनधर्म प्रचारक समिति, अमृतसर द्वारा होता है। यह समिति एक्ट २१, सन् १८६० के अनुसार रजिस्टर्ड है तथा इसे इन्कमटैक्स एक्ट, सन् १९६१ के सेक्शन ८८ व १०० के अनुसार आयकर-मुक्ति-प्रमाणपत्र प्राप्त है। समिति ने अब तक पार्श्वनाथ विद्याश्रम के निमित्त लगभग आठ लाख रुपये खर्च कर दिये हैं। संस्थान का निजी विशाल भवन है, अध्यक्ष एवं अन्य कर्मचारियों के निवास के लिए आवास हैं तथा शोधछात्रों के लिए छात्रावास का निर्माण हो रहा है। कुछ समय के लिए अध्ययन करने के निमित्त बाहर से आनेवाले शोधछात्रों, विद्वानों एवं साधु-साध्वियों के लिए अतिथिगृह के निर्माण की भी योजना है।

* चिह्नित ग्रन्थ अभी अप्राप्य हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

संस्थान की स्थापना के समय से लेकर अब तक २० विद्वानों ने पी-एच० डी० एवं डी० लिट्० के लिए प्रयत्न किया है जिनमें से अधिकांश को सफलता प्राप्त हुई है। वर्तमान में इस संस्थान में ५ शोधछात्र पी-एच० डी० के लिए प्रबन्ध लिखने में संलग्न हैं। प्रत्येक शोधछात्र को २००) रु० मासिक शोधवृत्ति दी जाती है। एम्० ए० में जैन दर्शन का विशेष अध्ययन करने वाले प्रत्येक छात्र को ५०) रु० मासिक छात्रवृत्ति देने की व्यवस्था है।

अध्यापन व निर्देशन :

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से संस्थानाध्यक्ष को एम० ए० की कक्षाओं में जैनदर्शन का अध्यापन करने तथा पी-एच० डी० के शोधछात्रों को निर्देशन देने की मान्यता प्राप्त है।

शतावधानी रत्नचन्द्र पुस्तकालय के नाम से संस्थान का एक समृद्ध पुस्तकालय है, जिस में शोधकार्य के लिए विशेष उपयोगी लगभग ११००० चुनी हुई पुस्तकों का दुर्लभ संग्रह है। वाचनालय में ८५ पत्र-पत्रिकाएँ आती हैं।

श्रमण नाम से संस्था का एक हिन्दी मासिक पत्र पिछले १९ वर्षों से प्रकाशित हो रहा है।

व्याख्यानमाला :

समय-समय पर किसी उपयोगी जैन विषय पर विशिष्ट विद्वानों के लिखित व्याख्यान हिन्दू यूनिवर्सिटी में कराये जाते हैं, जो कि बाद में पुस्तक-रूप में प्रकाशित कर दिये जाते हैं। व्याख्यानदाता को आने-जाने का प्रथम श्रेणी का किराया एवं एक हज़ार रुपया नक़द पुरस्कार भेंट किया जाता है। श्री हंसराज जैन (श्री रतनचन्द हरजसराय, अमृतसर) ने अपने एकमात्र पुत्र स्व० नरोत्तम-लाल की स्मृति में ११,०००) रु० के उदार अनुदान से इस व्याख्यानमाला की योजना की है।

प्रकाशन :

संस्थान अपने शोधछात्रों के शोध-प्रबन्ध और व्याख्यानमाला के अन्तर्गत दिये गये व्याख्यान आदि प्रकाशित करता है। जैन साहित्य का सर्वांगपूर्ण

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इतिहास भी इस की ओर से लिखवाया एवं प्रकाशित किया जा रहा है। प्रकाशन योजना के अन्तर्गत अब तक ग्यारह ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं तथा दो ग्रन्थ छप रहे हैं। प्रकाशित ग्रन्थों के नाम ये हैं :

1. JAINA PSYCHOLOGY–Dr. Mohan Lal Mehta Rs. 8-00
2. POLITICAL HISTORY Of Northern India from Jaina Sources–Dr. Gulab Chandra Choudhary Rs. 24-00
3. STUDIES IN HEMACANDRA'S DESINAMAMALA Dr. Hariballabh C. Bhayani Rs. 3-00

४. प्राकृत भाषा–डॉ० प्रबोध बेचरदास पण्डित १.५०
५. जैन आचार–डॉ० मोहनलाल मेहता ५.००
६. जैन साहित्य का बृहद् इतिहास-भाग १ –पं० बेचरदास दोशी १५.००
७. जैन साहित्य का बृहद् इतिहास-भाग २ – डॉ० जगदीशचन्द्र जैन व डॉ० मोहनलाल मेहता १५.००
८. जैन साहित्य का बृहद् इतिहास-भाग ३ –डॉ० मोहनलाल मेहता १५.००
९. बौद्ध और जैन आगमों में नारी-जीवन–डॉ० कोमलचन्द्र जैन १५.००
१०. जीवन-दर्शन –श्री गोपीचन्द धाड़ीवाल ३.००
११. यशस्तिलक का सांस्कृतिक अध्ययन –डॉ० गोकुलचन्द्र जैन २०.००

सन्मति ज्ञानपीठ, आगरा

लोहामण्डी, आगरा (उ. प्र.)

सन्मति ज्ञानपीठ की स्थापना सन् १९४५ में बहुश्रुत विद्वान् उपाध्याय श्री अमर मुनि ने की थी।

संस्थान के मुख्य उद्देश्य हैं—(१) जैन धर्म, दर्शन, संस्कृति, इतिहास एवं आचार से सम्बन्धित मौलिक तथा अन्वेषणात्मक साहित्य का सर्वविधि सुन्दर प्रकाशन करना। (२) साम्प्रदायिक पूर्वाग्रहों से मुक्त रह कर विद्वानों का सहयोग प्राप्त करना तथा उच्चकोटि के लोक-भोग्य साहित्य का सर्जन करवाना।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(३) संस्कृत, प्राकृत आदि प्राचीन भारतीय भाषाओं में संदृब्ध अप्रकाशित, दुर्लभ साहित्य का नवीन शैली से अनुसन्धान, सम्पादन एवं प्रकाशन करना।
(४) भारतीय संस्कृति और विशेषतः श्रमण संस्कृति के उत्कर्ष के लिए किये जाने वाले किसी भी उचित प्रयत्न में यथावसर सहयोग करना।

साहित्य प्रकाशन—दर्शन, इतिहास, जीवन चरित्र, कहानी, प्रवचन, उपदेश, स्तोत्रपाठ आदि विभिन्न विषयों पर प्रमुख विद्वानों, विचारकों एवं प्रवक्ता मुनिजनों के असाम्प्रदायिक श्रेष्ठ तथा जनोपयोगी साहित्य का प्रकाशन किया जाता है। विद्यालयों में बालकों को नैतिक तथा धार्मिक शिक्षण के लिए सरल, सर्वमान्य बाल-शिक्षण-साहित्य का प्रकाशन भी किया जाता है। जैन आगमों के विशिष्ट सम्पादन के साथ मूल व हिन्दी अनुवाद का प्रकाशन भी चल रहा है। अब तक उपर्युक्त विषयों पर श्री दलसुख भाई मालवणिया, पं० बेचरदास दोशी, डॉ० मोहन लाल मेहता, डा० इन्द्रचन्द्र शास्त्री, उपाध्याय कविरत्न श्री अमर मुनि, शास्त्री श्री विजय मुनि आदि जैन दर्शन के अनेक प्रतिष्ठा प्राप्त तथा उच्च कोटि के विद्वानों की लगभग १२० पुस्तकें प्रकाशित की जा चुकी हैं।

'श्री अमर भारती' नामक मासिक पत्रिका का प्रकाशन लगभग पाँच वर्ष से किया जा रहा है।

अनुसन्धान कार्य

जैन आगमों पर अनुसन्धान की दिशा में उपाध्याय श्री अमर मुनि जी तथा उन के दिशा निर्देशन में कुछ विद्वान् पिछले दशक से कार्यशील हैं। उपाध्याय श्री अमर मुनि ने, 'निशीथचूर्णि-भाष्य' नामक एक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ का सम्पादन किया है। यह दुर्लभ ग्रन्थ प्राचीन भारतीय साहित्य का आकर ग्रन्थ है। २०×३०×८ पेजी साइज में चार भागों में इस का प्रकाशन हुआ है। जैन दर्शन, प्राकृत भाषा आदि प्राच्यविद्या के सम्बन्ध में अनुसन्धान करने वाले छात्रों को भी संस्थान की ओर से यथाशक्य—सुविधा व उपाध्याय श्री अमर मुनि जी का दिशा निर्देशन प्राप्त होता रहता है।

साहित्य बिक्री—संस्था के प्रकाशनों से बराबर लाभान्वित होने की दृष्टि से

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

४०० के लगभग इसके स्थायी ग्राहक हैं, जिन का आजीवन शुल्क संस्थान को पूर्व प्राप्त हो चुका है और प्रत्येक प्रकाशन सेवा में पहुँच जाता है।

सांस्कृतिक प्रकाशनों की गति में तीव्रता लाने के लिए संस्थान ने अपने भावी कार्यक्रम के दो लक्ष्य निर्धारित किये हैं :—

(१) विश्व के धर्मों के तुलनात्मक और ऐतिहासिक अध्ययन पर आधारित समन्वयात्मक साहित्य का प्रकाशन।

(२) प्राचीन प्राकृत–संस्कृत साहित्य और विशेष कर आगम-साहित्य पर अनुसन्धान कर के अधुनातन शैली में सम्पादन व हिन्दी अनुवाद के साथ प्रकाशन।

जैन-साहित्य विकास मण्डल
११२, स्वामी विवेकानन्द रोड, इरला, विले पारले, बम्बई–५६

श्री जैन साहित्य विकास मण्डल की स्थापना सन् १९५४ में की गयी थी। इसका संचालन एक ट्रस्ट के अन्तर्गत होता है, जो बाम्बे पब्लिक ट्रस्ट एक्ट के अनुसार रजिस्टर्ड है तथा आयकर से मुक्त है।

उद्देश्य

संस्था की स्थापना का मुख्य उद्देश्य साहित्यिक संशोधन है। उस में भी मुख्यतया जैन सिद्धान्त, योग और ध्यानविषयक साहित्यको महत्त्व का स्थान दिया गया है। भगवान् महावीर के उपदेश तथा उन्हीं द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त और आचार-विचार के सम्बन्ध में जैनाचार्यों तथा विद्वानों ने जो विपुल साहित्य निर्मित किया है उन को प्रकाश में लाना और इस के लिए ऐसे साहित्य से सम्बद्ध प्राचीन हस्तलिखित प्रतियाँ प्राप्त करनी, उन को संशोधित सम्पादित और प्रकाशित कर के जनसमूह में उस का प्रचार करने की दिशा में मण्डल ने महत्त्वपूर्ण कार्य किये हैं और कर रहा है।

बम्बई में विवेकानन्द रोड पर संस्था का निजी भवन है। यहीं संस्था का कार्यालय तथा एक समृद्ध पुस्तकालय है। इस पुस्तकालय में आगम, स्तोत्र,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पूजा, कथा, प्रबन्ध, रास, चरित्र, व्याकरण, न्याय, काव्य, नाटक, अलंकार, छन्द, संगीत, ज्योतिष्, योग, ध्यान आदि अनेक विषयों के बहुमूल्य ग्रन्थ हैं। बौद्ध, वैदिक तथा तान्त्रिक आदि जैनेतर साहित्य के भी महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों का संग्रह है।

ग्रन्थ प्रकाशन

संस्था की ओर से अब तक निम्नलिखित साहित्य प्रकाशित हुआ है—

संस्कृत-प्राकृत

१. योगप्रदीप	१–५०
२. ध्यानविचार	अमूल्य
३. तत्त्वानुशासन	१–००
४. नमस्कार स्वाध्याय (प्राकृत विभाग)	२०–००
५. नमस्कार स्वाध्याय (संस्कृत विभाग)	१५–००
६. ऋषिमण्डलस्तवयन्त्रालेखन	३–००
७. ऋषिमण्डलयंत्र	१–००
८. सर्वसिद्धान्त प्रवेशक	१–००
९. जिनस्नानविधि तथा अर्हदभिषेक विधि	२–००
१०. योगसार	२–००

गुजराती

१. प्रतिक्रमणनी पवित्रता	०–३७
२. प्रतिक्रमणसूत्र–प्रबोधटीका भाग–१	५–००
३. प्रतिक्रमणसूत्र–प्रबोधटीका भाग–२	५–००
४. प्रतिक्रमणसूत्र प्रबोधटीका भाग–३	५–००
५. प्रतिक्रमणसूत्र प्रबोधटीकानुसारी (हिन्दी)	२–५०
६. प्रतिक्रमणसूत्र प्रबोधटीकानुसारी (गुजराती)	२–५०
७. सचित्रसार्थ सामायिक चैत्यवंदनसूत्र	१–२५
८. लोगस्स सूत्र स्वाध्याय	७–००

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अँगरेजी

1. A Comparative Study of the Jain Theories of Reality and Knowledge — 15–00
2. Praman-Naya-Tattvalokalamkara (English Translation and Commentary) — 20–00

आगामी प्रकाशन

१. सूरिमन्त्रकल्पसमुच्चय भाग–१
२. सूरिमन्त्रकल्पसमुच्चय भाग–२
३. 'उवसग्गहरं' स्तोत्र स्वाध्याय
४. शत्रुंजय धातु प्रतिमा लेखसंग्रह
५. साम्यशतक तथा समताशतक
६. समाधितन्त्र
7. Nyayavatar and Nyayakarnika with English Translation
८. योगशास्त्र अष्टम प्रकाशनुं सविस्तर विवरण

साहित्य शोध विभाग

महावीर भवन, जयपुर (राजस्थान)

श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र श्री महावीर जी की ओर से संचालित साहित्य शोध विभाग की स्थापना सन् १९४७ में हुई थी। इस की स्थापना का मुख्य श्रेय क्षेत्र के तत्कालीन मन्त्री श्री रामचन्द्र जी खिन्दूका को है और इस स्थापना के प्रेरणा स्रोत रहे हैं श्री पं० चैनसुखदास जी न्यायतीर्थ। जिन के निर्देशन में यह विभाग गत २० वर्षों से निरन्तर भारतीय साहित्य एवं विशेषतः जैन साहित्य की खोज, अनुसन्धान, प्रसार एवं प्रचार में लगा हुआ है। राजस्थान में जैन ग्रन्थागारों में हज़ारों ही नहीं किन्तु लाखों की संख्या में प्राचीन एवं हस्तलिखित ग्रन्थों का महत्त्वपूर्ण संग्रह आज भी पूर्णतः सुरक्षित है लेकिन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उन की सूचीकरण का कोई कार्य नहीं होने के कारण अब तक उन के सम्बन्ध में किसी को कोई जानकारी नहीं मिल पाती थी। राजस्थान के इन ग्रन्थागारों के महत्त्व को देखते हुए साहित्य शोध विभाग द्वारा सर्व-प्रथम इन भण्डारों की सूचीकरण का कार्य हाथ में लिया गया। और अब तक प्रायः सभी प्रमुख भण्डारों की छानबीन पूरी की जा चुकी है। राजस्थान में इन भण्डारों की संख्या १५० से अधिक होगी और उन में संग्रहीत ग्रन्थों की संख्या भी २ लाख से कम नहीं है।

साहित्य शोध विभाग द्वारा इन भण्डारों की सूचीकरण के कार्य के अतिरिक्त उन में संग्रहीत प्राचीन एवं महत्त्वपूर्ण तथा अप्रकाशित ग्रन्थों के परिचय आदि भी तैयार किये गये हैं जिन की संख्या १००० से कम नहीं होगी। इन में प्राकृत, संस्कृत, अपभ्रंश, हिन्दी एवं राजस्थानी भाषा के ग्रन्थ हैं। इन ग्रन्थों में जो प्रशस्तियाँ दी गयी हैं उन का भी एक संग्रह तैयार कर के प्रकाशित किया गया है।

साहित्य शोध विभाग द्वारा अब तक १४ पुस्तकें प्रकाशित की जा चुकी हैं जिन के विवरण साथ में संलग्न हैं। इन के प्रकाशन में कितनी ही नवीन कृतियों की जानकारी मिली एवं अपभ्रंश तथा हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखन में विद्वानों को महत्त्वपूर्ण सहयोग मिला। हिन्दी भाषा की दो प्राचीनतम कृतियाँ जिणदत्त चरित : रचना काल सं० १३७५ : तथा प्रद्युम्नचरित : रचना काल सं० १४११ : प्रकाशित की जा चुकी हैं तथा अब मध्यकालीन हिन्दी जैन साहित्य के लेखन का कार्य चल रहा है।

साहित्य शोध विभाग में वर्तमान में तीन विद्वान् काम करते हैं और ११००० रु० प्रतिवर्ष का बजट क्षेत्र की ओर से स्वीकृत किया हुआ है। डॉ० कस्तूरचन्द कासलीवाल विभाग के संचालक हैं।

प्रकाशित ग्रन्थ

१. राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारों की ग्रन्थसूची : भाग १ : इसमें लगभग २७०० से अधिक ग्रन्थों का सविवरण परिचय है।

पृष्ठ सं० २५८ मूल्य ५ रु०

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

२. राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारों की ग्रन्थ सूची : भाग २ : इस में ३७०० से अधिक ग्रन्थों का विस्तृत परिचय है। पृष्ठ सं० ४५० मूल्य ८ रु०

३. राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारों की ग्रन्थ सूची : भाग ३ : इस में १७८५ ग्रन्थों का सविवरण परिचय तथा १६९ ग्रन्थों एवं लेखक प्रशस्तियों का उत्तम संग्रह है। पृष्ठ सं० ४१२ मूल्य ७ रु०

४. प्रशस्ति संग्रह : आमेर शास्त्र भण्डार जयपुर की संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश एवं हिन्दी भाषा के ग्रन्थों की ग्रन्थ एवं लेखक प्रशस्तियों का अपूर्व संग्रह है। पृष्ठ सं० ३३५ मूल्य ७ रु०

५. तामिल भाषा का जैन साहित्य मूल्य ०.२५ पैसे

६. सर्वार्थसिद्धि सार पूज्यपाद कृत सर्वार्थसिद्धि का सार : सम्पादक श्री पं० चैनसुखदास न्यायतीर्थ। मूल्य ४ रु०

७. Jainism a key to true happiness (अप्राप्य)

८. प्रद्युम्न चरित : (कवि सधारू विरचित १४वीं शताब्दी का हिन्दी का एक प्राचीन काव्य)। पृष्ठ सं० ३६० मूल्य ४ रु०

९. राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारों की ग्रन्थ सूची : भाग ४ : इस में १०,००० ग्रन्थों का विवरण, अज्ञात एवं महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों का परिचय, साथ में अन्य महत्त्वपूर्ण एवं उपयोगी परिशिष्ट दिये गये हैं। पृष्ठ सं० १००० मूल्य १५ रु०

१०. जैन ग्रन्थ भण्डार्स इन राजस्थान (अँगरेज़ी) : डॉ० कस्तूरचन्द कासलीवाल का शोध प्रबन्ध। पृष्ठ सं० ४०० मूल्य १५.०० रुपये

११. राजस्थान के जैन सन्त व्यक्तित्व एवं कृतित्व : पृष्ठ संख्या ३२० मूल्य ६.०० रुपये

१२. जिणदत्त चरित-कविवर राजसिंह विरचित : पृष्ठ संख्या २९६ मूल्य ५.०० रुपये

१३. चम्पाशतक—कवयित्री चम्पादेवी पृष्ठ संख्या १२४ मूल्य २.०० रुपये

१४. हिन्दी पद संग्रह पृष्ठ संख्या ४९० मूल्य ३.०० रुपये

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आगामी योजना

भविष्य में निम्न पुस्तकों पर कार्य हो रहा है।

१. मध्यकालीन हिन्दी जैन साहित्य : इस कृति में संवत् १३५१ से संवत् १९०० तक निबद्ध कृतियों का आलोचनात्मक परिचय होगा। अभी तक जैन विद्वानों की कृतियों का विस्तृत परिचय किसी भी पुस्तक में उपलब्ध नहीं है इस लिए इन के मूल्यांकन में विद्वानों को पर्याप्त कठिनाई अनुभव होती है। यही नहीं सैकड़ों ऐसी कृतियाँ हैं जिन का परिचय भी नहीं मिलता है। इसी दृष्टि को ध्यान में रख कर इस पुस्तक पर कार्य हो रहा है।

२. राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारों की ग्रन्थ सूची पंचम भाग : इस भाग में राजस्थान के ५० भण्डारों में संग्रहीत २०००० हस्तलिखित ग्रन्थों का परिचय रहेगा।

३. राजस्थान का जैन पुरातत्त्व : इस पुस्तक में राजस्थान में उपलब्ध प्राचीन मूर्तियों, शिलालेखों एवं मन्त्रों के आधार पर जैन कला, संस्कृति एवं पुरातत्त्व पर मूल्यांकन प्रस्तुत किया जायेगा।

प्रथम कृति के लेखक हैं डॉ० कस्तूरचन्द कासलीवाल एवं दूसरी तथा तीसरी के सम्पादक हैं डॉ० कस्तूरचन्द कासलीवाल एवं पं० अनूपचन्द न्यायतीर्थ, साहित्य रत्न।

जैन साहित्य शोध-संस्थान

आगरा (उ० प्र०)

आगरा की दि० जैन क्षिशा-समिति ने सन् १९५४ में जैन साहित्य शोध-संस्थान के वट-बीज का वपन किया था। आज संस्थान का अपना विशाल भवन है और उसी में एक समृद्ध पुस्तकालय भी है। इस संस्थान के सहयोग से एक दर्जन से अधिक विद्वान् आगरा विश्वविद्यालय से पी-एच० डी० की उपाधियाँ प्राप्त कर चुके हैं और अब उच्च पदों पर आसीन हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

संस्थान को गति देने और एक समृद्ध शोध-संस्थान के रूप में विकसित करने में श्री महेन्द्र तथा डॉ० राजकुमार जैन के प्रयत्न बहुमूल्य रहे हैं।

संस्थान के कुछ नवीन संकल्प

१. ग्रन्थमालाओं का प्रकाशन—संस्थान की ओर से हिन्दी, संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश लेखकों की महत्त्वपूर्ण रचनाओं का विविध ग्रन्थमालाओं के अन्तर्गत प्रकाशन करने का हमारा संकल्प है। यह ग्रन्थ उच्चकोटि के विद्वानों-द्वारा विधिवत् सम्पादन करा के भूमिका आदि के साथ प्रकाशित किये जायेंगे।

२. अहिन्दी भाषाओं के ग्रन्थों का अनुवाद—कन्नड़ और तमिल भाषाओं में जैन-साहित्य के परिचय देने वाली दो पुस्तकें हम लिखवा रहे हैं, जो शीघ्र प्रकाशित की जायेंगी। इन भाषाओं के महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों के अनुवाद भी हिन्दी में प्रकाशित करने का विचार है। इक कार्य के लिए भी आगरा बहुत ही उपयुक्त स्थान है। यहाँ सभी भाषाओं के विद्वानों का सहयोग प्राप्त है।

३. प्राकृत-संस्कृत तथा दर्शन की शिक्षा—यह भी योजना है कि संस्थान के तत्त्वावधान में यहाँ प्राकृत-संस्कृत तथा दर्शनशास्त्र की शिक्षा का एक प्रतिष्ठान प्रारम्भ किया जाय। यह अपने में ही एक बड़ा महत्त्वपूर्ण कार्य है। हमारी योजना यह है कि इन विषयों में एम० ए० की पढ़ाई का प्रबन्ध भी यहाँ हो और जैन-दर्शन की ऊँची से ऊँची शिक्षा दी जाय जिस से समाज में खटकने वाले जैन दार्शनिकों के अभाव को पूरा किया जा सके।

४. ट्रेनिंग कालेज—देश में जैन-शिक्षा-संस्थाओं की कमी नहीं है। लगभग ३००-४०० विद्यालय, स्कूल और कॉलेज जैन भाइयों-द्वारा चलाये जा रहे हैं। इन में धार्मिक-शिक्षा का समुचित प्रबन्ध नहीं है। हमारी योजना यह है कि आगरा में ऐसी व्यवस्था हो जो प्रति वर्ष दस-बीस अध्यापक शिक्षण की डिग्री बी० टी०, एल० टी०, बी० एड०, एम० एड० के साथ धर्म की शिक्षा देने की भी डिग्री ले सकें। प्रशिक्षण का ऐसा केन्द्र बनाने के भी साधन यहाँ मौजूद हैं। इस की भी पूरी योजना तैयार है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

५. पुरातत्त्व संग्रहालय—पुरातत्त्व का एक बड़ा संग्रहालय बनाने की भी बड़ी आवश्यकता है। ऐसी विपुल सामग्री जिस से प्राचीन इतिहास पर प्रभाव पड़ सकता है और पुरातत्त्व की दृष्टि से जो बड़ी महत्त्वपूर्ण है, बुरी तरह नष्ट होती जा रही है। यह सब सामग्री एक स्थान पर एकत्रित की जाय और उस के संरक्षण तथा अध्ययन की व्यवस्था हो—इस बात की बड़ी आवश्यकता है।

इन्स्टीटयूट ऑव आरक्योलाजिकल रिसर्च

२६ सी ब्लाक, श्री गंगानगर (राजस्थान)

प्राचीन भारतीय संस्कृति और सभ्यता के मूल स्वरूप की शोध-खोज के उद्देश्य से स्थापित यह संस्थान श्री रामचन्द्र जैन के सद्प्रयत्नों का सुफल है। संस्थान के उद्देश्यों की पूर्ति की दिशा में श्री जैन ने अब तक दो ग्रन्थ प्रकाशित किये हैं—

१. साइन्टीफिक श्रमणिज़्म
२. द मोस्ट ऐंशियेन्ट अर्थात् सोसायटी।

मुद्रण में तथा प्रकाश्य ये ग्रन्थ हैं—

१. एन्थोलाजी ऑव ऐंशियेन्ट भारत
२. हस्तिनापुर : द ऐंशियेंण्ट केपिटल ऑव अहिस्थल जनपद
३. लाइट प्रो लांग डार्कनेस
४. जय : द ब्रह्मार्यान कान्क्वेस्ट ऑव भारत
५. ओरिजिन्स, ग्रोथ एण्ड नेचर ऑव द उपनिसदिक फिलासफी

प्राचीन संस्कृति और सभ्यता की शोध-खोज के विषय में श्री जैन का नितान्त मौलिक तथा अपना ढंग (एप्रोच) है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आगम साहित्य प्रकाशन समिति

३, पोर्चुगीज़ चर्च स्ट्रीट, कलकत्ता –१

आचार्य तुलसी स्वयं एक व्यक्ति नहीं संस्था हैं। उन्हों ने जैन संस्कृति को जन-जीवन में उतारने और जैन-वाङ्मय को जन-जन के लिए उपयोगी बनाने के प्रयत्न किये हैं। उन की परिकल्पना से आगम साहित्य के सम्पादन-प्रकाशन की एक महत्त्वपूर्ण योजना बनी, जिस की घोषणा औरंगाबाद में महावीर जयन्ती (वि० सं० २०१२) पर की गयी। योजना की परिकल्पना यह है—

१. **आगम-सुत्त ग्रन्थ-माला :**
इस ग्रन्थ-माला में आगमों के मूलपाठ, पाठान्तर, शब्दानुक्रम आदि होंगे।

२. **आगम ग्रन्थ-माला :**
इस ग्रन्थ-माला में आगमों के मूलपाठ, पाठान्तर, संस्कृत-छाया, हिन्दी-अनुवाद, पद्यानुक्रम या सूत्रानुक्रम आदि होंगे।

३. **आगम-अनुसन्धान ग्रन्थ-माला :**
इस ग्रन्थ-माला में आगमों के टिप्पण होंगे।

४. **आगम-अनुशीलन ग्रन्थ-माला :**
इस ग्रन्थ-माला में आगमों के समीक्षात्मक अध्ययन होंगे।

५. **वर्गीकृत-आगम ग्रन्थ-माला :**
इस ग्रन्थ-माला में आगमों के वर्गीकृत और संक्षिप्त संस्करण होंगे।

६. **आगम-कथा ग्रन्थ-माला :**
इस ग्रन्थ-माला में सभी आगमों से सम्बन्धित प्राचीन चूर्णि, टीका आदि की कथाओं का संकलन होगा।

उक्त ग्रन्थ-मालाओं के अन्तर्गत निम्नलिखित ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं—

१. आगम-सुत्त ग्रन्थ-माला

१. दसवेआलियं तह उत्तरज्झयणाणि : "दशवैकालिक" एवं "उत्तराध्ययन" एक साथ। अत्यन्त शोध-खोज के साथ निर्धारित मूलपाठ और पाठान्तर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सहित। साथ में गवेषणात्मक विस्तृत सम्पादकीय (पृ० सं० ३५) एवं भूमिका (पृ० सं० ४६), विस्तृत विषय-सूची, शब्द-सूची, परिशिष्ट आदि। साईज डिमाई १/८। सुन्दर रेक्सीन जिल्द। समग्र पृ० सं० ८३२। मूल्य १७ रु०।

२. आयारो तह आयार-चूला : "आचारांग" के दोनों श्रुतस्कन्ध एक साथ मूलपाठ, पाठान्तर, शब्द-सूची, परिशिष्ट आदि से युक्त। साथ ही मननीय सम्पादकीय एवं भूमिका। साईज डिमाई १/८। सुन्दर रेक्सीन जिल्द। समग्र पृ० सं० ६३२। मूल्य १३ रु०।

३. निसीहज्झयणं : "निशीथ" का उपर्युक्त दोनों ग्रन्थों के अनुसार ही सम्पादन। साईज डिमाई १/८। सुन्दर रेक्सीन जिल्द। समग्र पृ० सं० लगभग ३५०।

२. आगम ग्रन्थमाला

३. आगम-अनुसन्धान ग्रन्थ-माला

१. दसवेआलियं : "दशवैकालिक"। प्रत्येक अध्याय के आरम्भ में टिप्पणी युक्त आमुख, मूलपाठ, संस्कृत-छाया, हिन्दी-अनुवाद, विस्तृत टिप्पण, गवेषणापूर्ण भूमिका एवं परिशिष्ट से युक्त। साईज डिमाई १/४। प्लास्टिक जिल्द। पृ० सं० ७८८। मूल्य २५ रु०।

२. उत्तरज्झयणाणि एवं उत्तराध्ययन-टिप्पण।
दो खण्डों में दसवेआलियं की सारी विशेषताओं को लिये हुए। अधिकता—पाठान्तर एवं पाठान्तरों की टिप्पणी से युक्त। साईज डिमाई १/४। पूरी रेक्सीन जिल्द। पृ० सं० ६७२ + ४०४ = १०७६। क्रमशः मूल्य २० रु० एवं १६ रु०।

४. आगम-अनुशीलन ग्रन्थमाला

१. दशवैकालिक एक समीक्षात्मक अध्ययन।
परिचय, नामकरण, रचना-काल, रचना-शैली, व्याकरण-विमर्श, उपलब्ध व्याख्या ग्रन्थ आदि के सम्बन्ध में विस्तृत और महत्त्वपूर्ण चर्चा एवं शोधपूर्ण

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सामग्री से युक्त। दशवैकालिक का हिन्दी में सर्व-प्रथम गम्भीर तलस्पर्शी अध्ययन। साईज डिमाई १/८। सुन्दर रेक्सीन जिल्द। पृ० सं० २५०। मूल्य ८ रु०।

२. उत्तराध्ययन : एक समीक्षात्मक अध्ययन।

इस माला के प्रथम ग्रन्थ की सारी विशेषताओं से युक्त। मुद्रणस्थ।

५. वर्गीकृत-आगम ग्रन्थ-माला

१. दशवैकालिक वर्गीकृत। (धर्म-प्रज्ञप्ति खण्ड : १)

इसमें दशवैकालिक के ५२३ श्लोकों का ६३ विषयों में वर्गीकृत संग्रह। हिन्दी-अनुवाद सहित अनुपम संकलन। साईज डबल फुलस्केप १/१६। पूरी सुन्दर रेक्सीन जिल्द। पृ० सं० ३९२। मूल्य ५ रु०।

२. उत्तराध्ययन वर्गीकृत। (धर्म-प्रज्ञप्ति खण्ड : २)

दशवैकालिक की तरह ही उत्तराध्ययन के चुने हुए श्लोकों का विषयानुसार वर्गीकरण, हिन्दी-अनुवाद सहित। (प्रकाशनाधीन)।

प्रयत्न यह है कि भगवान् महावीर के २५००वें निर्वाण महोत्सव तक पूरी योजना साकार हो सके। इसी उद्देश्य से आचार्यश्री तथा उन के विद्वान् शिष्य-साधु-साध्वियाँ इस महान् उद्देश्य की पूर्ति में दृढ़ता के साथ लगे हैं।

श्री ऐलक पन्नालाल दि० जैन सरस्वती भवन

ब्यावर, राजस्थान

श्री १०५ स्व० ऐ० पन्नालाल जी महाराज ने जैन शास्त्र-भण्डारों की दुर्दशा से द्रवित हो कर शास्त्रों की सुरक्षा के लिए आज से ५४ वर्ष पूर्व वि० सं० १९७१ के ज्येष्ठ शुक्ल ५ के दिन झालरापाटन में सरस्वती भवन की स्थापना की थी। उस के पश्चात् भवन का कार्यक्षेत्र बढ़ा और दूसरी शाखा बम्बई में वि० सं० १९७९ की श्रुत पंचमी के दिन खोली गयी और तीसरी शाखा ब्यावर में वि० सं० १९९२ की श्रुतपंचमी के दिन खोली गयी।

पूज्य श्री ऐलक जी महाराज ने सरस्वती भवन के सुचारु संचालनार्थ धन-संग्रह भी किया और सारे भारत में परिभ्रमण कर सहस्रों हस्तलिखित शास्त्र

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ला कर एकत्रित किये। ऐलक जी महाराज अपने जीवन-काल में ही भवन का ट्रस्ट क़ायम कर के उस की व्यवस्था ट्रस्टियों के हाथों में सौंप गये थे। उन में से जो ट्रस्टी दिवंगत होते गये, उन के स्थान पर नये-नये ट्रस्टी निर्वाचित होते रहे हैं। वर्तमान में ट्रस्टी इस प्रकार हैं :

१. श्री भँवरलाल जी सेठी, इन्दौर, २. सेठ राजकुमार सिंह जी इन्दौर, ३. श्री भूपेन्द्र कुमार जी सेठी उज्जैन, ४. सेठ कस्तूरचन्द्र जी पांड्या झालरापाटन, ५. श्री सेठ सुन्दर लाल जी रानीवाला व्यावर, ६. सेठ गेंदनमल जी बम्बई, ७. सेठ हुक्मचन्द्र जी पांड्या उज्जैन, ८. श्री निर्मलकुमार जी सोनी, अजमेर। ९. रा० सा० मोतीलाल जी के स्वर्गवास हो जाने से इस समय स्थान रिक्त है

तीनों भवनों में शास्त्र-संख्या इस प्रकार है :

१. व्यावर–भवन	५४८७
२. बम्बई भवन	४३०१
३. झालरापाटन भवन	२५४१
	१२३२९

जैन समाज के प्रायः सभी रिसर्चस्कालर एवं ग्रन्थ-सम्पादक भवन से ग्रन्थों को मँगाते रहते हैं और भवन में शोध-कार्य निरन्तर चालू रहता है।

श्री गणेशप्रसाद वर्णी जैन ग्रन्थमाला

—१।१२८ डुमराव बाग़-वसति, अस्सी, वाराणसी–५

१. मेरी जीवन गाथा (वर्णी जी द्वारा लिखित)	भाग १	४.००
२. ,, ,,	भाग २	४.२५
३. वर्णी वाणी	भाग १	३.५०
४. ,,	भाग २	४.००
५. ,,	भाग ३	
६. ,,	भाग ४	३.५०

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

७.	जैन साहित्य का इतिहास (पूर्व पीठिका) भाग १	१०.००
८.	जैन दर्शन	७.००
९.	पंचाध्यायी	९.००
१०.	श्रावकधर्मप्रदीप	४.००
११.	तत्त्वार्थसूत्र	५.००
१२.	द्रव्यसंग्रह	१.५०
१३.	अपभ्रंश प्रकाश	३.००
१४.	मन्दिर–वेदी प्रतिष्ठा–कलशारोहण विधि	१.२५
१५.	अनेकान्त और स्याद्वाद	.२५

भारतीय प्राच्य तत्त्व-प्रकाशन-समिति

उद्देश्य : (१) संस्कृत व प्राकृत भाषा में निबद्ध भारतीय तत्त्वज्ञान के साहित्य को आधुनिक सम्पादन पद्धति से प्रकाशित करना। (२) प्राचीन तत्त्वज्ञान के साहित्य का विशेष संशोधन करवा कर उसकी प्रस्तावना, विस्तृत विषय परिचय आदि प्रान्तीय भाषा में छपवा कर सामान्य जनता में तत्त्वज्ञान के प्रति रुचि उत्पन्न करना। (३) कर्मवाद के विषय में संस्कृत प्राकृत भाषा के माध्यम से नये ग्रन्थ तैयार करवा कर वर्तमान युग में कर्मसिद्धान्त का अधिकतम प्रचार करना।

स्थापना : इस संस्था की स्थापना सन् १९६२ में की गयी थी। इसका अपना ट्रस्ट है जिसके वर्तमान में १२ ट्रस्टी हैं—(१) शेठ रमणलाल दलसुख भाई (प्रमुख) (२) शेठ माणेकलाल चुनिलाल (३) शेठ जीवतलाल प्रतापसी (४) शा खूबचन्द अचलदास जी (५) शा समरथमल जी रायचन्द जी (मन्त्री) (६) शा शान्तिलाल सोमचन्द (मन्त्री) (७) शा लालचन्द छगनलालजी (मन्त्री) (८) शेठ रमणलाल वजेचन्द (९) शा हिंमतमल रुघनाथ जी (१०) शेठ जेठाभाई चुनिलाल घीवाला (११) शा इन्द्रमल जी हीराचन्द्र जी (१२) शा मन्नालाल जो रिखबाजी।

उपर्युक्त उद्देश्यों की पूर्ति के लिए स्व० आचार्य श्री विजयप्रेम सूरीश्वर जी महाराज ने एक विशाल योजना बनायी थी तथा उसे कार्यान्वित करने के लिए स्वयं अथक परिश्रम किया और श्री जैन श्वे० साधु संघ में से विशिष्ट साधुओं को

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इस महत्त्वपूर्ण कार्य में लगाया। अनवरत श्रम-साधना और अध्यवसाय के परिणाम-स्वरूप अब तक ४ भाग बड़ी साइज में प्रकाशित हो चुके हैं, तीन मुद्रण में हैं तथा शेष दस भाग तैयारी में। कार्य को तीव्र-गति देने के लिए संस्था ने अपना ज्ञानोदय प्रि० प्रेस भी प्रारम्भ किया है।

समिति के प्रकाशन तथा आगामी योजना यह है :—

प्रकाशित

१. खवगसेढी (क्षपक श्रेणि) क़रीब २०००० श्लोकप्रमाणवृत्तियुक्त	मूल्य	रु० २१)
२. मूल प्रकृति ठिइबंधो (स्थितिबन्ध) प्रेमप्रभावृत्ति युक्त		रु० २१)
३. मूलप्रकृति सबन्ध ,, ,, ,,		रु० २५)
४. मूलप्रकृति प्रदेशबन्ध ,, ,, ,,		रु० २५)
५. खवगसेढी (शास्त्राकार) क़रीब २०००० श्लोकप्रमाणवृत्ति युक्त		२५)
६. ठिइबंधो (,,) ,, ,, ,,		२५)
७. खवगसेढी (संस्कृत छाया व गुजराती अनुवाद)	मूल्य	रु० २)
८. भारतीय धर्मो मां कर्मवाद	मूल्य	५० नये पैसे
९. जैनधर्म का अद्वितीय कर्म विज्ञान	मूल्य	२५ नये पैसे

मुद्रणालय में

१. मूल प्रकृतिबन्ध प्रेमप्रभावृत्तियुक्त
२. उत्तर प्रकृतिरसबन्ध ,, ,,
३. उत्तर प्रकृति स्थितिबन्ध प्रेमप्रभावृत्तियुक्त

प्रकाश्य

१. शतकचूर्णि टिप्पन
२. कर्मप्रकृतिचूर्णि टिप्पन
३. उत्तर प्रकृतिबन्ध प्रेमप्रभावृत्तियुक्त
४. ,, ,, ,, स्थानप्ररूपणा प्रेमप्रभावृत्तियुक्त
५. उत्तर प्रकृति भूयस्कारादिबन्ध ,, ,,
६. उत्तरप्रकृति स्थिति रसभूयस्कारादिबन्ध ,,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

७. उत्तर प्रकृति रस भूयस्कारादिवन्ध ,, ,,

८. उत्तर प्रकृतिप्रदेशवन्ध

९. उत्तर प्रकृतिप्रदेश भूयस्कारादिवन्ध

संस्था से पत्र-सम्पर्क इन पतों पर किया जा सकता है—

१. C/o ज्ञानोदय प्रिन्टीग प्रेस, पिण्डवाडा स्टेट, सिरोही रोड (Rajasthan)

२. C/o रमणलाल वजेचन्द, मस्कती मार्केट, अहमदाबाद-२

३. C/o रमण लाल लालचन्द शाह, १३५।१३७ झवेरी बाज़ार, बम्बई-२

दिगम्बर जैन पुस्तकालय

गान्धी चौक, सूरत

लगभग ६१ वर्ष पूर्व श्री मूलचन्द्र किशनदास कपड़िया ने इस संस्थान की स्थापना की थी। इस के तत्त्वावधान में जैनमित्र (साप्ताहिक), दिगम्बर जैन तथा महिलादर्श (मासिक) नामक पत्रिकाएँ प्रकाशित होती रही हैं। हिन्दी तथा गुजराती में छोटी-बड़ी लगभग दो सौ पुस्तकें दि० जैन साहित्य से सम्वन्धित प्रकाशित हुई हैं। इस के अतिरिक्त अन्य प्रकाशकों के जैन साहित्य के वितरण-विक्रय की व्यवस्था भी यह संस्थान करता रहा है। इस संस्थान के माध्यम से श्री कापड़िया जी ने जैन साहित्य-समाज और संस्कृति की महती सेवा की है।

श्री दि० जैन स्वाध्याय मन्दिर ट्रस्ट

सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

चिद्विलास	१-५०
समयसार	५-००
प्रवचनसार	४-००
नियमसार	५-५०
पंचास्तिकाय संग्रह	४-५०
दशलक्षण धर्म (प्रवचन)	०-५०
छहढाला मूल	०-८१
* समयसार प्रवचन भाग १	
* समयसार प्रवचन भाग २	

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

समयसार प्रवचन भाग ३ ।४ ।	४)	४-५०
* मोक्षमार्ग प्रकाशक की किरणें भाग १		
* मोक्षमार्ग प्रकाशक की किरणें भाग २		
* मोक्षशास्त्र (तत्त्वार्थसूत्रजी)		
* सम्यग्दर्शन		५-००
* ज्ञानस्वभाव-ज्ञेयस्वभाव		
मुक्ति का मार्ग		०-५०
* भेदविज्ञानसार		
* मूल में भूल		
निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध क्या है ?		०-१५
जैन सिद्धान्त प्रश्नोत्तरमाला भाग १-२-३ प्रत्येक		०-६५
* जैन तीर्थ क्षेत्र पूजा पाठ संग्रह-तीर्थ परिचय		
स्तोत्रत्रयी		०-५०
* आध्यात्मिक पाठ संग्रह		३-००
शासन प्रभाव		०-१२
लघु जैन सिद्धान्त प्रवेशिका		०-२५
जैन बाल पोथी (सचित्र)		०-२५
* वैराग्य पाठ संग्रह		१-२५
* भक्ति पाठ संग्रह		१-००
* पंचमेरु और नन्दीश्वर पूजन विधान		०-७५
आत्मधर्म (मासिक पत्र)		३-००
आत्मधर्म (पुरानी फ़ाइलें) वर्ष १, ३, ५, ६, ७, ८, १० प्रत्येक का मूल्य		३-७५
* अनुभवप्रकाश		०-५०
समयसार हिन्दी पद्यानुवाद		१-००
नियमसार		१-००
अपूर्व अवसर काव्य पर प्रवचन		१-२५

* तारांकित ग्रन्थ अप्राप्य हैं ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भारतीय ज्ञानपीठ : मूर्तिदेवी ग्रन्थमाला

"ज्ञान की विलुप्त, अनुपलब्ध और अप्रकाशित सामग्री का अनुसन्धान एवं प्रकाशन तथा लोक-हितकारी मौलिक साहित्य का निर्माण।" के उद्देश्य से १८ फ़रवरी सन् १९४४, फाल्गुन कृष्ण ९ वि० संवत् २००० को भारतीय ज्ञानपीठ की स्थापना हुई थी।

"ज्ञानकी विलुप्त, अनुपलब्ध और अप्रकाशित सामग्री के अनुसन्धान और प्रकाशन" की दिशा में ज्ञानपीठ का प्रथम प्रकाशन-कार्यक्रम था 'महाबन्ध' नामक प्राकृत ग्रन्थ के सात भागों का प्रकाशन, जिन की कुल पृष्ठसंख्या रॉयल साइज़ में तीन हज़ार से अधिक है और जिन के सम्पादन-प्रकाशन में लगभग नब्बे हज़ार रुपये व्यय हुए हैं। 'महाबन्ध' भारतीय दर्शन में प्रतिपादित कर्मसिद्धान्त का अद्वितीय ग्रन्थ है जिस के रचयिता जैनाचार्य भगवन्त भूतबलि की अद्भुत प्रतिभा और तपस्या को देखकर बुद्धि आश्चर्यचकित हो जाती है। ताड़पत्रों पर प्राचीन हडेगन्नड़ (कन्नड़) लिपि में लिखी इस ग्रन्थराज की एकमात्र प्रति के दर्शनों के लिए भक्त लोग दक्षिण भारत की यात्रा करते थे। प्रथम भाग की भूमिका में सम्पादक ने लिखा है, "इन ग्रन्थों की प्रतिलिपि भारतवर्ष-भर में अन्यत्र कहीं भी नहीं थी। इन शास्त्रों का प्रमेय क्या है, यह किसी को भी पता नहीं था....जिस प्रकार विशेष भेंट ले कर भक्त गुरु के समीप जाता है, उसी प्रकार वन्दक व्यक्ति भी यथाशक्ति उचित द्रव्य अर्पण कर ग्रन्थराज की वन्दना करता था।...."

उक्त 'महाबन्ध' का प्रथम भाग सन् १९४७ में मूर्तिदेवी ग्रन्थमाला के अन्तर्गत प्रकाशित हुआ है। ग्रन्थमाला का आरम्भ साहू श्री शान्तिप्रसाद जैन की स्वर्गीया माता श्रीमती मूर्तिदेवी जी के नाम से हुआ, जिन की प्रेरणा और श्रद्धा के फलस्वरूप उन की स्मृति में उन के पुत्र तथा पुत्रवधू ने ज्ञानपीठ की स्थापना की।

मूर्तिदेवी ग्रन्थमाला में अब तक ६७ ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं। भाषा की दृष्टि से उन की संख्या इस प्रकार है : प्राकृत ११, संस्कृत ३४, अपभ्रंश ७, पाली १, तमिल १, हिन्दी (देवनागरी लिपि) १२, अँगरेज़ी (अनुवाद) १।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इन ग्रन्थों में संस्कृत साहित्य की अनेक अमूल्य कृतियाँ हैं जो विभिन्न विषयों से सम्बन्धित हैं : कवि धनंजय-कृत 'नाममाला' एक ऐसा छन्दबद्ध कोषग्रन्थ है जिसे सरलता से याद कर के कोई भी पाठक अपनी शब्द-सम्पदा बढ़ा सकता है। संस्कृत व्याख्या में प्रत्येक शब्द की उत्पत्ति दे कर मूल भाव को और शब्द-रचना को स्पष्ट किया गया है। 'सभाष्यरत्नमंजूषा' प्राचीन छन्दः-शास्त्र का दुर्लभ ग्रन्थ है, 'मदन-पराजय' एक सरस प्रतीक काव्य है, 'जैनेन्द्रमहावृत्ति' विशेष व्याकरण ग्रन्थ है, 'केवलज्ञानप्रश्नचूडामणि' फलित ज्योतिष का चमत्कारी ग्रन्थ है जो प्रश्नकर्ता की जिज्ञासा का तत्काल उत्तर प्रस्तुत करता है। हस्तरेखा विज्ञान पर प्राचीन प्राकृत ग्रन्थ 'करलक्खण' भी इसी वर्ग की रचना है।

पुराण साहित्य, प्राचीन कथा, नाटक और चम्पू साहित्य तथा आचारशास्त्र के बीसियों ग्रन्थ अपने-अपने स्थान पर विशिष्ट हैं। मूर्तिदेवी ग्रन्थमाला की अद्वितीयता देश के सांस्कृतिक प्रकाशन-क्षेत्र में यह है कि इस के द्वारा भारतीय विद्या के उन उपेक्षित ज्ञान-स्रोतों की खोज की गयी है और उन का प्रवाह उन्मुक्त किया गया है जिन की जानकारी के बिना समूचा प्राचीन ज्ञान अधूरा रह रहा था। 'महाबन्ध' की तरह अन्य अनेक ऐसे दार्शनिक, सैद्धान्तिक तथा न्याय-विषय के ग्रन्थों का सम्पादन-प्रकाशन हुआ है जिन की महत्ता की चर्चा भारत के विद्वानों में थी किन्तु जो अब तक प्रकाशित नहीं हुए थे या यदि प्रकाशित भी थे तो आधुनिक ढंग से ऐतिहासिक विवेचन के साथ उन का सम्पादन नहीं हुआ था।

मूर्तिदेवी ग्रन्थमाला में प्रकाशित होने वाले प्रत्येक प्राचीन ग्रन्थ का सम्पादन वैज्ञानिक ढंग से होता है, और सम्पादन की पद्धति भी सुनिश्चित है। इस पद्धति के अनुसार प्राचीन शास्त्र-भण्डारों में उपलब्ध तमिल-कन्नड़ आदि लिपियों में लिखी हुई प्रतियों से मूल, संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश ग्रन्थों का मिलान किया जाता है; और ग्रन्थों की भूमिका में विद्वान् सम्पादक ग्रन्थकर्ता के जीवन, कृतित्व, ऐतिहासिक पृष्ठभूमि और विषय-प्रतिपादन की विशेषताओं आदि पर विशद प्रकाश डालते हैं। ग्रन्थमाला के प्रत्येक ग्रन्थ का मूल्य लागत से कम रखा जाता है ताकि वह पाठकों को सुलभ रहे। प्रकाशित साहित्य इस प्रकार है :

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सिद्धान्त और कर्मग्रन्थ

महाबन्ध [प्राकृत-हिन्दी] भाग १-७ : आचार्य भगवन्त भूतबलि
सं० अनु० : [भाग १] पं० सुमेरचन्द्र दिवाकर
[भाग २-७] पं० फूलचन्द्र सिद्धान्त शास्त्री।
जैन धर्म के कर्मसिद्धान्त का सूक्ष्मतम विवेचन करने वाला महत्त्वपूर्ण प्राचीन ग्रन्थरत्न। दक्षिण भारत में प्राप्त एकमात्र ताड़पत्रीय प्रति से सम्पादित और अनुवादित। प्रथम भाग द्वि० सं०, शेष प्रथम संस्करण, सातों भागों की पृष्ठ-संख्या सुपर रायल ३०४४। **प्रत्येक भाग ग्यारह रुपये**

कर्मप्रकृति [प्राकृत-हिन्दी] : नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ति
सम्पादन-अनुवाद : पं० हीरालाल शास्त्री
जैन कर्मसिद्धान्त का विवेचन करने वाला गोम्मटसार की परम्परा में लिखित एक विशिष्ट ग्रन्थ। सरल हिन्दी अनुवाद के साथ प्रथम बार प्रकाशित। प्रथम संस्करण, सुपर रायल पृष्ठ-संख्या ३२ + १६०। **मूल्य छह रुपये**

तत्त्वार्थराजवार्त्तिक [संस्कृत-हिन्दी] भाग १-२ : भट्ट अकलंकदेव
सम्पा० : डॉ० महेन्द्रकुमार न्यायाचार्य
जैन-तत्त्वज्ञानका स्पष्ट और प्रामाणिक विवेचन। अनेक ताड़पत्रीय प्रतियों के आधार से सम्पादित प्रामाणिक संस्करण। संक्षिप्त हिन्दी सार सहित। प्रथम संस्करण, दोनों भागों की पृष्ठ-संख्या सुपर रायल ९०२। **मूल्य चौबीस रुपये**

सर्वार्थसिद्धि [संस्कृत-हिन्दी] : आचार्य पूज्यपाद देवनन्दि
सं० अनु० : पं० फूलचन्द्र सिद्धान्त शास्त्री
आचार्य उमास्वातिकृत तत्त्वार्थ सूत्र पर सरल संक्षिप्त वृत्ति। अब तक प्रकाशित सर्वार्थसिद्धि के सभी संस्करणों से अधिक प्रामाणिक, अधिक उपादेय। महत्त्वपूर्ण हिन्दी प्रस्तावना और अनुवाद सहित। प्रथम संस्करण, पृष्ठ-संख्या ५३४।
मूल्य बारह रुपये

पंचसंग्रह [प्राकृत-संस्कृत-हिन्दी] : अज्ञात
सं० अनु० : पं० हीरालाल सिद्धान्तशास्त्री
जैन दृष्टि से जीव और कर्म की विविध दशाओं का तलस्पर्शी, गम्भीर किन्तु सुगम

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

और सरल विवेचन। महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक प्रस्तावना तथा हिन्दी अनुवाद-सहित। प्रथम संस्करण, सुपर रायल, पृष्ठ-संख्या ८६८।

मूल्य पन्द्रह रुपये

जैनधर्मामृत [संस्कृत-हिन्दी]

संकलन-सम्पा० : पं० हीरालाल सिद्धान्तशास्त्री

जैन धर्म के मूल सिद्धान्तों का विभिन्न प्रामाणिक ग्रन्थों से संकलन, सम्पादन और हिन्दी अनुवाद। अनेक विषयों की एकत्र जानकारी। प्रथम संस्करण, क्राउन साइज, पृष्ठ-संख्या २६०। मूल्य तीन रुपये

जैन न्याय

जैन न्याय [हिन्दी] : पं० कैलाशचन्द्र शास्त्री

जैन-न्याय के प्राचीन ग्रन्थों का सूक्ष्म अध्ययन करने के बाद सार रूप में हिन्दी में प्रस्तुत महत्त्वपूर्ण कृति। प्रथम संस्करण, डिमाई, पृष्ठ-संख्या १६ + ३६८।

मूल्य नौ रुपये

सत्यशासन-परीक्षा [संस्कृत] : विद्यानन्द

सम्पादन : डॉ० गोकुलचन्द्र जैन

जैन-न्याय के सिद्धान्तों का संक्षेप में परिपूर्ण विवेचन करने वाली कृति। प्राचीन पाण्डुलिपियों के आधार पर सुसम्पादित, विस्तृत हिन्दी प्रस्तावना और परिशिष्टों सहित प्रथम बार प्रकाशित। प्रथम संस्करण, सुपर रायल, पृष्ठ ५६ + ३४ + ६२।

मूल्य पाँच रुपये

सिद्धिविनिश्चयटीका [संस्कृत [भाग १-२ : भट्ट अकलंकदेव

सम्पा० : डॉ० महेन्द्रकुमार न्यायाचार्य

जैन-न्याय के प्रतिष्ठापक आचार्य भट्ट अकलंकदेव की लुप्तप्राय महत्त्वपूर्ण कृति का कच्छ से प्राप्त अनन्तवीर्यकृत संस्कृत टीका की एक मात्र पाण्डुलिपि से मूल ग्रन्थ का उद्धार, संशोधन और सम्पादन। जैन-न्याय के सिद्धान्तों का सांगोपांग विवेचन करने वाला अद्वितीय ग्रन्थ। प्रथम संस्करण, सुपर रायल, पृष्ठ-संख्या दोनों भागों की ११३२। मूल्य तीस रुपये

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

न्यायविनिश्चयविवरण [संस्कृत] भाग १-२ : अकलंकदेव :
वादिराज सूरि, सम्पा० : डॉ० महेन्द्रकुमार न्यायाचार्य

जैन-न्याय और दर्शन के मूल सिद्धान्तों का विस्तृत विवेचन। मूल संस्कृत कारिकाओं की स्वयं अकलंकदेवकृत संस्कृत व्याख्या। हिन्दी प्रस्तावना में समस्त भारतीय दर्शनों का पर्यालोचन। प्रथम संस्करण, सुपर रायल, पृष्ठ संख्या दोनों भागों की ११३८।

मूल्य तीस रुपये

पुराण-साहित्य

आदि पुराण [संस्कृत-हिन्दी] भाग १-२ : आचार्य जिनसेन
सं० अनु० : पं० पन्नालाल साहित्याचार्य

जैन-धर्म के प्रथम तीर्थंकर भगवान् ऋषभदेव का पुण्य चरित्र तथा भारतीय संस्कृति, विशेषतया जैन-संस्कृति के अनेक उपादानों का आकर ग्रन्थ। द्वितीय संस्करण, दो भागों में सुपर रायल साइज़ के लगभग १३५० पृष्ठ।

मूल्य बीस रुपये

उत्तरपुराण [संस्कृत-हिन्दी] : आचार्य गुणभद्र
सं० अनु० : पं० पन्नालाल साहित्याचार्य

भगवान् आदिनाथ के अतिरिक्त २३ तीर्थंकर, ११ चक्रवर्ती, ९ बलभद्र, ९ नारायण, ९ प्रतिनारायण तथा तत्कालीन विशिष्ट राजाओं एवं पुण्यपुरुषों के जीवन वृत्त। प्रथम संस्करण, सुपर रायल, पृष्ठ-संख्या ६६६।

मूल्य दस रुपये

पद्मपुराण [संस्कृत-हिन्दी] भाग १-३ : आचार्य रविषेण
सं० अनु० : पं० पन्नालाल साहित्याचार्य

जैन-साहित्य में राम की प्रिय एवं प्रेरक कथा का चित्रण करने वाला सरस, सरल और लोकप्रिय ग्रन्थ, जिस में राम का ही नहीं राम-कथा के प्रत्येक पात्र का चरित निखरा है, निखरता गया है। प्रथम संस्करण, तीनों भागों की पृष्ठ-संख्या सुपर रायल १५५६।

मूल्य तीस रुपये

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पुराणसार संग्रह [संस्कृत-हिन्दी] भाग १-२ : आचार्य दामनन्दि
सं० अनु० : डॉ० गुलाबचन्द्र चौधरी

जैन-तीर्थंकर आदिनाथ, चन्द्रप्रभ, शान्तिनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ तथा वर्धमान का जीवनवृत्त। सरस संस्कृत और ललित हिन्दी अनुवाद। प्रथम संस्करण, क्राउन साइज़, पृष्ठ-संख्या दोनों भाग ४४२। **मूल्य चार रुपये**

हरिवंशपुराण [संस्कृत-हिन्दी] : आचार्य जिनसेन
सं० अनु० : पं० पन्नालाल साहित्याचार्य

जैन-साहित्य में श्रीकृष्ण की प्रिय एवं प्रेरक कथा का वर्णन करने वाले इस ग्रन्थ में सम्पूर्ण हरिवंश का परिचय तथा जैनधर्म और संस्कृति के उपादानों का स्पष्ट विवेचन तो किया ही गया है भारतीय संस्कृति और इतिहास की भी बहुविध सामग्री भरी पड़ी है। प्रथम संस्करण, सुपर रायल, पृष्ठ-संख्या १००८।

मूल्य सोलह रुपये

चरित और काव्य-ग्रन्थ

भोजचरित्र [संस्कृत] : राजवल्लभ
सम्पादन : डॉ० बहादुरचन्द्र छाबड़ा, एस० शंकरनारायणन्

परमार नरेश महाराज भोज के जीवन-चरित्र पर लिखित ऐतिहासिक महत्त्व का एक विशिष्ट काव्य। महत्त्वपूर्ण अँगरेज़ी प्रस्तावना तथा विवेचनात्मक टिप्पणों के साथ प्रकाशित। प्रथम संस्करण, सुपर रायल, पृष्ठ-संख्या २४ + १९२।

मूल्य आठ रुपये

करकंड चरिउ [अपभ्रंश-हिन्दी] : मुनि कनकामर
सम्पादन-अनुवाद : डॉ० हीरालाल जैन

जैन और बौद्ध परम्परा में प्रत्येक बुद्ध के रूप में प्रसिद्ध महाराज करकण्डु के जीवन पर लिखित एक ललित और महत्त्वपूर्ण कृति। हिन्दी-अँगरेज़ी प्रस्तावना, अनुवाद, विवेचनात्मक नोट्स तथा परिशिष्टों के साथ प्रस्तुत। द्वितीय संस्करण, सुपर रायल, पृष्ठ-संख्या ६४ + २७८। **मूल्य दस रुपये**

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पउमचरिउ [अपभ्रंश-हिन्दी] : महाकवि स्वयंभू
सं० अनु० : डॉ० देवेन्द्रकुमार जैन

मानव-मूल्यों की सक्रिय चेतना का एक ऐसा ललित काव्य जिस में रामकथा का परम्परागत वर्णन होने पर भी शैली-शिल्प, चित्रांकन, लालित्य और कथावस्तु में अनेक विशेषताएँ हैं। प्रथम संस्करण, क्राउन साइज़, तीनों भागों की पृष्ठ-संख्या १०१२। मूल्य नौ रुपये

मयणपराजयचरिउ [अपभ्रंश-हिन्दी] : कवि हरिदेव
सं० अनु० : डॉ० हीरालाल जैन

मनुष्य की पाशविक वृत्ति पर परमात्म-वृत्ति की विजय का प्रतिपादन करने वाली प्रतीक शैली में निबद्ध, एक ऐसी ललित कृति जो भारतीय प्रतीक साहित्य के इतिहास में अपने ढंग की अद्वितीय रचना है। प्रथम संस्करण, सुपर रायल, पृष्ठ-संख्या १७७। मूल्य आठ रुपये

मदनपराजय [संस्कृत-हिन्दी] : कवि नागदेव
सं० अनु० : डॉ० राजकुमार जैन

मदन-पराजय की कथा को सरस, सरल संस्कृत में प्रस्तुत करने वाला प्रतीक काव्य। द्वितीय संस्करण, सुपर रायल, पृष्ठ-संख्या १४ + ५८ + १४४।
मूल्य छह रुपये

जीवन्धरचम्पू [संस्कृत-हिन्दी] : महाकवि हरिचन्द्र
सं० अनु० : पं० पन्नालाल साहित्याचार्य

सरल गद्य और पद्य में निबद्ध वह जनप्रिय कथा जिस ने मध्ययुग के अनेक साहित्यकारों को संस्कृत, अपभ्रंश, तमिल, कन्नड़, गुजराती, मराठी आदि अनेक भाषाओं में कथा कहने के लिए प्रेरित किया। प्रथम संस्करण, सुपर रायल, पृष्ठ-संख्या ३९८।
मूल्य आठ रुपये

धर्मशर्माभ्युदय [हिन्दी] : महाकवि हरिचन्द्र
अनु० : पं० पन्नालाल साहित्याचार्य

संस्कृत धर्मशर्माभ्युदय महाकाव्य का सरस हिन्दी रूपान्तर जिस में मूल की आत्मा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भी सुरक्षित है और कथा कहने की मौलिकता भी। प्रथम संस्करण, क्राउन साइज़ पृष्ठ-संख्या ३८०। मूल्य तीन रुपये

जातकट्ठकथा [पालो] भाग १ : आचार्य बुद्धघोष

सं० : भिक्षु धर्मरक्षित

प्रसिद्ध पाली जातक का देवनागरी संस्करण। भगवान् बोधिसत्त्व के जीवन से सम्बद्ध अनेक रोचक कथाओं का आकलन तथा भारतीय सांस्कृतिक सामग्री का संग्रह। प्रथम संस्करण, सुपर रायल, पृष्ठ-संख्या ४००। मूल्य नौ रुपये

सुगन्धदशमी कथा [पाँच भाषाओं में]

सम्पादन-अनुवाद : डॉ० हीरालाल जैन

एक प्राचीन भारतीय लोक-कथा जिस के बीज प्राचीन भारतीय साहित्य तथा सागर-पार के साहित्य में भी मिलते हैं। अपभ्रंश, संस्कृत, गुजराती, मराठी तथा हिन्दी में लिखित सुगन्धदशमी कथाओं का एक महत्त्वपूर्ण संग्रह ग्रन्थ। प्रथम संस्करण, सुपर रायल पृष्ठ-संख्या १८ + २६ + १०० + १६ + ५०।

मूल्य ग्यारह रुपये

ज्योतिष और सामुद्रिक शास्त्र

भद्रबाहुसंहिता [संस्कृत-हिन्दी] : आचार्य भद्रबाहु

सं० अनु० : डॉ० नेमिचन्द्र जैन

भारतीय फलित ज्योतिष की बहुविध जानकारी देने वाला एक ऐसा ग्रन्थ जिसे पढ़ कर साधारण पाठक भी ज्योतिष का जानकार बन सकता है। प्रथम संस्करण, सुपर रायल पृष्ठ-संख्या ४८०। मूल्य आठ रुपये

केवलज्ञानप्रश्नचूडामणि [संस्कृत-हिन्दी] : अज्ञात

सं० अनु० : डॉ० नेमिचन्द्र जैन

ज्योतिष शास्त्र का एक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ जिस में चन्द्रोन्मीलन प्रश्नप्रणाली द्वारा ज्योतिष के विविध विषयों का विवेचन किया गया है। परिशिष्ट में मुहूर्त निका-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लने, कुण्डली वनाने इत्यादि की भी जानकारी दी गयी है। प्रथम संस्करण, सुपर रायल पृष्ठ-संख्या १८२। मूल्य चार रुपये

करलक्खण [प्राकृत-संस्कृत-हिन्दी] : अज्ञात
सं० अनु० : प्रो० प्रफुल्लकुमार मोदी

सामुद्रिक शास्त्र का लघुकाय किन्तु महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ, जिस में हस्तरेखाएँ बोलती हैं। तृतीय संस्करण, पृष्ठ-संख्या ४८। मूल्य पचहत्तर पैसे

आचार-शास्त्र

उपासकाध्ययन [संस्कृत-हिन्दी] : सोमदेव सूरि
सम्पादन-अनुवाद : पं० कैलाशचन्द्र शास्त्री

यशस्तिलक चम्पू के अन्तिम तीन आश्वासों को सोमदेव ने उपासकाध्ययन नाम दिया है। इन में जैन श्रावकाचार का विवेचन है। पं० कैलाशचन्द्र शास्त्री के सरल हिन्दी अनुवाद, विस्तृत महत्त्वपूर्ण प्रस्तावना तथा परिशिष्टों के साथ यह संस्करण विशेष उपयोगी बन गया है। प्रथम संस्करण, सुपर रायल, पृष्ठ-संख्या ११६ + ५३९। मूल्य बारह रुपये

वसुनन्दिश्रावकाचार [प्राकृत-हिन्दी] : आचार्य वसुनन्दि
सं० अनु० : पं० हीरालाल सिद्धान्तशास्त्री

गृहस्थाचार का सांगोपांग विवेचन करनेवाला ग्रन्थ जो केवल एक आचार संहिता ही प्रस्तुत नहीं करता प्रत्युत श्रावक धर्मों के क्रम विकास का एक परिपूर्ण इतिहास भी प्रस्तुत करता है। प्रथम संस्करण, सुपर रायल पृष्ठ-संख्या २३०।

मूल्य पाँच रुपये

पूजा और व्रत-विधान

सोलह कारण भावना [हिन्दी] : महात्मा भगवानदीन

दर्शन विशुद्धि आदि सोलह कारण भावनाओं का प्रसिद्ध चिन्तक महात्मा भगवानदीन द्वारा प्रस्तुत मौलिक विवेचन। प्रथम संस्करण, डवल क्राउन पृष्ठ-संख्या ४ + १५८। मूल्य दो रुपये

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ज्ञानपीठपूजांजलि [संस्कृत-प्राकृत-अपभ्रंश-हिन्दी]

संकलन-सं० : डॉ० आ० ने० उपाध्ये, पं० फूलचन्द्र सिद्धान्तशास्त्री

संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश तथा हिन्दी नित्य-नैमित्तिक पूजा-पाठ, स्तुति-स्तोत्र, आरती, भजन आदि का प्रथम वार प्रकाशित सर्वांगपूर्ण और प्रामाणिक संस्करण। प्रथम संस्करण, क्राउन साइज़, पृष्ठ-संख्या ५७८।

मूल्य चार रुपये

व्रततिथिनिर्णय [संस्कृत-हिन्दी] : सिंहनन्दि

सं० अनु० : डॉ० नेमिचन्द्र जैन

जैन संस्कृति और आचार-संहिता में स्वीकृत विभिन्न व्रतों का परिचय, उन के पालन करने की विधि तथा उन की तिथि निकालने की प्रक्रिया सरल भाषा में विवेचन करने वाला महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ। प्रथम संस्करण, क्राउन साइज़, पृष्ठ-संख्या २८०।

मूल्य तीन रुपये

व्याकरण

जैनेन्द्रमहावृत्ति [संस्कृत] : देवनन्दि, अभयनन्दि

सं० : पं० शम्भुनाथ त्रिपाठी

आचार्य पूज्यपाद देवनन्दिकृत जैनेन्द्र व्याकरण पर आचार्य अभयनन्दि की विस्तृत वृत्ति। व्याकरण-शास्त्र का एक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ जो शाकटायन और पाणिनि की परम्परा में एक नयी कड़ी जोड़ता है। प्रथम वार प्रकाशित। प्रथम संस्करण, सुपर रायल, पृष्ठ-संख्या ५६४।

मूल्य पन्द्रह रुपये

छन्द शास्त्र

सभाष्य रत्नमंजूषा [संस्कृत-हिन्दी] : अज्ञात

सं० : हरिदामोदर वेलणकर

सूत्र पद्धति में लिखित छन्दःशास्त्र का एक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ जो अपने भाष्य के साथ सच ही रत्नमंजूषा है। प्रथम संस्करण, सुपर रायल पृष्ठ-संख्या ८२।

मूल्य दो रुपये

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कोश

नाममाला सभाष्य [संस्कृत] : धनंजय, अमरकीर्ति
सं० : पं० शम्भुनाथ त्रिपाठी

संस्कृत भाषा का एक लघु किन्तु चमत्कारी कोश ग्रन्थ जिस में एक शब्द के अनेक अर्थ और अनेक शब्दों का एक अर्थ ही नहीं दिया गया प्रत्युत उन शब्दों की व्युत्पत्ति भी दी गयी है। प्रथम संस्करण, सुपर रायल, पृष्ठ संख्या १५६।

मूल्य साढ़े तीन रुपये

विविध

कन्नडप्रान्तीय ताडपत्रीय ग्रन्थ-सूची : सं० : पं० के० भुजवली शास्त्री

जैन-मठ, जैन-सिद्धान्त भवन, सिद्धान्त वसदि मूडविद्री, जैन-मठ कारकल, आदि-नाथ ग्रन्थ-भण्डार अलियूर तथा मूडविद्री के अन्य ग्रन्थ-भण्डारों के ३५३८ अमूल्य ताडपत्रीय ग्रन्थों का सविवरण परिचय। प्रथम संस्करण, सुपर रायल पृष्ठ-संख्या ३५६।

मूल्य तेरह रुपये

जिनसहस्रनाम [संस्कृत-हिन्दी] : पं० आशाधर
सं० : पं० हीरालाल सिद्धान्तशास्त्री

तीर्थंकर के लिए प्रयुक्त होने वाले एक हजार आठ नामों की सयुक्तिक व्युत्पत्ति और विवेचन। अपने ढंग की पहली कृति और प्रथम प्रकाशन। प्रथम संस्करण, सुपर रायल, पृष्ठ-संख्या २८८।

मूल्य चार रुपये

वर्ण, जाति और धर्म [हिन्दी] : पं० फूलचन्द्र सिद्धान्तशास्त्री

जैन-सिद्धान्त और शास्त्रीय प्रमाणों के आधार पर जैन-दृष्टि से वर्ण, जाति और धर्मविषयक मान्यता का निष्पक्ष और प्रामाणिक विवेचन। अपने ढंग की प्रथम कृति। प्रथम संस्करण, क्राउन साइज, पृष्ठ-संख्या ४७२।

मूल्य तीन रुपये

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दक्षिण भारत में जैन धर्म [हिन्दी]

लेखक—पं० कैलाशचन्द्र शास्त्री

दक्षिण भारत में जैन धर्म का प्रचार सुदूर प्राचीन काल से रहा है। इधर की शोध-खोजों के आधार पर कई विद्वानों ने अँगरेज़ी में दक्षिण भारत में जैन धर्म की जानकारी दी है। हिन्दी में अभी तक यह सामग्री उपलब्ध नहीं थी। विद्वान् लेखक ने परिश्रमपूर्वक हिन्दी पाठकों के लिए इसे तैयार किया है। डिमाई आकार के २१८ पृष्ठों में पुस्तक छप कर तैयार है तथा पाठकों के लिए उपलब्ध है।

मूल्य सात रुपये

कल्याणकल्पद्रुम [संस्कृत-हिन्दी]

मूल—वादिराज सूरि, सम्पादन—अनुवाद : श्री जुगलकिशोर मुख़्तार

एकीभाव नाम से प्रसिद्ध संस्कृत स्तोत्र को पं० जुगलकिशोर मुख़्तार ने विस्तृत हिन्दी भाष्य सहित कल्याणकल्पद्रुम नाम से तैयार किया है। प्रस्तावना में नाम की सार्थकता आदि पर विस्तार से विचार किया गया है। पुस्तक क्राउन साइज़ के ७५ पृष्ठों में छप कर तैयार है। मुख़्तार साहब ने अपनी ९१वीं जन्म जयन्ती के शुभ अवसर पर इस की एक हज़ार प्रतियाँ निःशुल्क भी वितरित की हैं।

मूल्य डेढ़ रुपये

आधुनिक जैन कवि [हिन्दी] : संक० सं० : श्रीमती रमा जैन

बीसवाँ शती के चुने हुए प्रसिद्ध जैन कवियों का परिचय और उनकी सुरुचिपूर्ण कविताओं का संकलन। प्रथम संस्करण, क्राउन साइज़, पृष्ठ संख्या २८०।

मूल्य तीन रुपये पचहत्तर नये पैसे

मंगल मन्त्र णमोकार : एक अनुचिन्तन [हिन्दी] : डॉ० नेमिचन्द्र जैन

महामन्त्र णमोकार की व्याख्या और उस के माहात्म्य का सरल, संक्षिप्त और सरस विवेचन। तृतीय संस्करण, क्राउन साइज़, पृष्ठ-संख्या २५८।

मूल्य दो रुपये

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नये प्रकाशन

गद्यचिन्तामणि

मूल : वादीभसिंह सूरि : सम्पादक : पं० पन्नालाल साहित्याचार्य

गद्यचिन्तामणि वाणभट्ट कृत कादम्बरी की शैली पर लिखा गया एक विशिष्ट गद्य ग्रन्थ है। इस में वादीभसिंह सूरि ने प्रौढ़ संस्कृत में जीवन्धर का चरित्र निबद्ध किया है। जैन साहित्य में इस कथा को आधार बना कर अनेक ग्रन्थ लिखे गये। उन सब में यह एक विशिष्ट एवं उच्चकोटि का ग्रन्थ है, जो संस्कृत टीका तथा हिन्दी अनुवाद के साथ पहली बार प्रकाशित हुआ है।

संस्कृत के गद्यकाव्यों की परम्परा तथा कथा के लालित्यपूर्ण गुम्फन को गद्यचिन्तामणि की रचना ने एक नया आयाम दिया है। साहित्यिक दृष्टि से ही नहीं, यह ग्रन्थ इस लिए भी महत्त्वपूर्ण है कि इस में भारतीय सांस्कृतिक जीवन का यथार्थ अंकन उपलब्ध होता है। वादीभसिंह ने अपने पूर्व के साहित्य की सभी उपलब्धियों को ही आत्मसात् नहीं किया था उन की बिम्बग्राहिणी प्रतिभा ने अपने युग के सांस्कृतिक जीवन के जो चित्र ग्रहण किये उन्हें सावधानीपूर्वक अपने काव्य में उतार दिया। एक बड़ी विशेषता यह कि एक कुशल मणिहार-द्वारा सावधानी से पिरोये गये हार के मणियों की तरह वादीभसिंह सूरि ने अपने इस काव्य ग्रन्थ में एक-एक शब्द को ऐसे पिरोया है कि दीर्घ-दीर्घतर समासों में भी काव्य का लालित्य और सौन्दर्य खोया नहीं है।

प्रस्तुत संस्करण में सम्पादक ने सरल संस्कृत व्याख्या तथा मूलानुगामी सरस हिन्दी अनुवाद दे कर ग्रन्थ को सभी के लिए उपयोगी बना दिया है।

प्रस्तावना में ग्रन्थ और ग्रन्थकार के विषय में विविध प्रकार की जानकारी दी गयी है तथा परिशिष्ट में गद्यचिन्तामणि में समागत व्यक्तिवाचक, भौगोलिक, पारिभाषिक तथा विशिष्ट शब्दों का शब्दकोश दिया गया है।

गद्यचिन्तामणि का यह विशिष्ट संस्करण संस्कृत साहित्य के अध्येताओं के लिए तो अनिवार्य रूप से पठनीय है ही प्राचीन भारतीय संस्कृति के अध्येताओं तथा प्रत्येक सुरुचि सम्पन्न व्यक्ति के लिए भी उपयोगी एवं महत्त्व का है।

मूल्य बारह रुपये

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जंबूसामिचरिउ

मूल : वीर कवि : सम्पा० : डॉ० विमलप्रकाश जैन

वीर कवि कृत जंबूसामिचरिउ विक्रम की ११वीं शती का एक महत्त्वपूर्ण अपभ्रंश ग्रन्थ है। इस संस्करण में यह सर्वप्रथम प्रकाशित हुआ है।

जम्बूस्वामि जैन परम्परा के एक विशिष्ट ऐतिहासिक पुरुष थे और भगवान् महावीर के साक्षात् शिष्य आचार्य सुधर्म-द्वारा वे श्रमण संघ में दीक्षित हुए थे। वे अन्तिम केवली थे। ४६३ ईसवी पूर्व में उन का निर्वाण हुआ।

जम्बूस्वामि का जीवनचरित्र जन-जीवन तथा साहित्यकारों के लिए एक विशेष प्रेरणास्रोत रहा है। विभिन्न भारतीय भाषाओं में इसे आधार बना कर लिखी गयी लगभग ९५ रचनाएँ अब तक उपलब्ध हुई हैं। प्रस्तुत जम्बूसामि-चरिउ उन सब में विशिष्ट है। ऐतिहासिक जीवन चरित, अपभ्रंश काव्य साहित्य तथा तत्कालीन भारतीय संस्कृति की दृष्टि से इस कृति का विशेष महत्त्व है।

प्रस्तुत संस्करण में डॉ० विमलप्रकाश जैन ने मूल अपभ्रंश के साथ ललित हिन्दी रूपान्तर तो दिया ही है, एक सौ अड़तालीस पृष्ठों की विस्तृत हिन्दी प्रस्तावना में जम्बूस्वामि के जीवन चरित्र के बहुकोणीय अध्ययन के साथ ही साथ ग्रन्थकार और ग्रन्थ का विस्तृत समीक्षात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया है जिस में ग्रन्थ के महाकाव्यात्मक लक्षणों, विषय वस्तु से सम्बद्ध विभिन्न चरित्रों, विषय के अभ्यन्तरवर्ती उपाख्यानों, काव्य गुण, रीति, रस, अलंकार तथा कवि-द्वारा प्रयुक्त छन्द एवं भाषा, समसामयिक अवस्था आदि का सांगोपांग विवेचन किया गया है।

प्राचीन भारतीय भाषाओं के अध्येता विद्वानों तथा साधारण पाठकों के लिए समान रूप से पठनीय एवं संग्रहणीय कृति।

मूल्य पन्द्रह रुपये

योगसार-प्राभृत

मूल : आचार्य अमितगति : सम्पा० : पं० जुगलकिशोर मुख्तार

आचार्य अमितगति कृत योगसार-प्राभृत भारतीय योगशास्त्र—विशेष कर जैन योगशास्त्र की एक महत्त्वपूर्ण कृति है। जैन-दर्शन में योग का अर्थ है ध्यान।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ध्यान अर्थात् एकाग्रचिन्तानिरोध। बाह्य परिवेश तथा मन के राग-द्वेष आदि विकारों से सर्वथा निर्लिप्त हो कर साधक जब आत्मस्वरूप के चिन्तन में तल्लीन होता है तब वह परम समाधिरूप योग को प्राप्त करता है। तभी वह कर्मों के आस्रव और बन्ध को रोकता हुआ संवर और निर्जरा-द्वारा बँधे हुए कर्मों को नष्ट करता है। और अपने शुद्धचिदानन्दैकरूप स्वभाव को प्राप्त होता है।

प्रस्तुत ग्रन्थ के नौ अधिकारों में आचार्य अमितगति ने विस्तार के साथ इन विषयों का विवेचन किया है। जीव और अजीव के वास्तविक स्वरूप का ज्ञान होने के उपरान्त योगी के भावों का किस प्रकार क्रमिक विकास होता जाता है और किस प्रकार वह एक के बाद एक श्रेणी चढ़ता हुआ मोक्ष के सर्वोच्च शिखर पर आरोहित होता है, इन स्थितियों का स्पष्ट और सांगोपांग विवेचन इस में उपलब्ध होता है।

इस संस्करण की एक बड़ी विशेषता यह है कि विद्वान् सम्पादक ने अपने विस्तृत हिन्दी भाष्य में विषय को अत्यन्त सुबोध शैली में प्रस्तुत किया है। जैन विद्याओं का अध्ययन-अनुशीलन करने वालों के लिए अनिवार्य यह ग्रन्थ प्राचीन भारतीय तत्त्वज्ञान तथा भारतीय विद्याओं में रुचि रखने वाले प्रत्येक व्यक्ति के लिए उपयोगी एवं पठनीय है।

मूल्य आठ रुपये

कर्मप्रकृति

मूल : अभयचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती : सम्पा० : डॉ० गोकुलचन्द्र जैन

यह एक लघुकाय किन्तु महत्त्वपूर्ण कृति है, जिस में सरल संस्कृत गद्य में जैन कर्म-सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया है। डॉ० जैन ने पहली बार इस का सम्पादन तथा हिन्दी अनुवाद किया है। विषय के आधार पर सम्पादक ने पूरी कृति को छोटे-छोटे दो सौ बत्तीस वाक्य-खण्डों में विभाजित किया है।

प्रस्तुत कर्मप्रकृति में जैन कर्म-सिद्धान्त के अनुसार द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्म, प्रकृति, स्थिति, अनुभाग तथा प्रदेश, ज्ञानावरणीय आदि आठ मूल-प्रकृतियाँ, एक सौ अड़तालीस उत्तरप्रकृतियाँ, उत्तरोत्तर प्रकृतियाँ, संसारी तथा मुक्त जीव, पाँच प्रकार की उपलब्धियाँ तथा १४ गुणस्थानों का व्यवस्थित वर्णन किया गया

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है। विषय के अतिरिक्त भाषा का लालित्य और शैली की प्रवाहमयता के कारण प्रस्तुत कृति का महत्त्व और अधिक बढ़ जाता है। साधारण संस्कृत का जानकार व्यक्ति भी अभयचन्द्र की इस कृति से जैन कर्म-सिद्धान्त की पर्याप्त जानकारी प्राप्त कर सकता है। ललित हिन्दी-अनुवाद तथा परिशिष्ट एवं प्रस्तावना आदि के कारण इस की उपयोगिता और भी बढ़ गयी है।

मूल्य दो रुपये

उत्तरपुराण (नया संस्करण)

मूल : आचार्य गुणभद्र : सम्पा० : पं० पन्नालाल साहित्याचार्य

महापुराण पुराण-साहित्य की एक महत्त्वपूर्ण निधि है। सम्पूर्ण ग्रन्थ के दो भाग हैं : आदिपुराण और उत्तरपुराण। आचार्य जिनसेन अपने जीवन-काल में केवल आदिपुराण की रचना कर पाये, आचार्य गुणभद्र ने उस का उत्तर भाग रचा।

पूरा ग्रन्थ मूल संस्कृत, हिन्दी अनुवाद, महत्त्वपूर्ण प्रस्तावना तथा अनेक परिशिष्टों के साथ सुसम्पादित हो कर तीन भागों में पहली बार प्रकाश में आया है।

आदिपुराण में जैन-धर्म के प्रथम तीर्थंकर भगवान् ऋषभदेव के पुण्यचरित तथा उत्तरपुराण में शेष २३ तीर्थंकरों, ११ चक्रवर्तियों, ९ बलभद्रों, ९ नारायणों, ९ प्रतिनारायणों तथा तत्कालीन विभिन्न राजाओं एवं पुराण पुरुषों के जीवन-वृत्तों का सविशेष वर्णन हुआ है। महापुराण भारतीय संस्कृति विशेष कर जैन संस्कृति के इतिहास का एक उमड़ता हुआ स्रोत है। यह एक ओर भारतीय संस्कृति की विभिन्न धाराओं के पारस्परिक आदान-प्रदान का एक सम्पूर्ण चित्र प्रस्तुत करता है तो दूसरी ओर पुराण-रचयिताओं की साहित्यिक उपलब्धियों का विवरण देता है। जिस प्रकार वैदिक-परम्परा के पुराणों तथा धर्मशास्त्रों में मनुष्य-समाज का विभिन्न वर्गों में वर्गीकरण, उन के पृथक्-पृथक् विशेष आचारों का वर्णन, गर्भाधान से ले कर अन्त्येष्टि पर्यन्त धार्मिक संस्कारों एवं ब्रह्मचर्य आदि आश्रमों में जीवन के उत्थान व विकास का क्रम दिखलाया गया है, उसी प्रकार इस पुराण में भी पाया जाता है। काव्यशास्त्र की दृष्टि से भी यह एक महत्त्वपूर्ण कृति है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विस्तृत शब्दकोश के साथ प्रकाशित उत्तरपुराण का यह नया संस्करण इन सब विशेषताओं के कारण न केवल धार्मिक जन के लिए ही प्रत्युत पुराणसाहित्य के तुलनात्मक अध्येताओं के लिए भी अनिवार्य हो गया है।

मूल्य दस रुपये

मुद्रण में

१. शाकटायन व्याकरण [संस्कृत]

मूल : आचार्य शाकटायन : सम्पादन : पं० शम्भुनाथ त्रिपाठी

व्याकरण साहित्य का यह एक विशिष्ट ग्रन्थ है। अमोघवृत्ति सहित इस का सर्वप्रथम प्रकाशन हो रहा है। लगभग सात वर्ष पूर्व यह ग्रन्थ मुद्रण के लिए प्रेस में दिया गया था, किन्तु विभिन्न प्रकार की कठिनाइयों के कारण मुद्रण में इतना समय लग गया। पूरा ग्रन्थ सुपर रायल साइज़ के ४७२ पृष्ठों में छप चुका है। इस की प्रस्तावना जर्मनी में भारतीय व्याकरण शास्त्र के विशिष्ट विद्वान् डॉ० विरवे लिख रहे हैं। प्रस्तावना तैयार होते ही ग्रन्थ पाठकों को सुलभ हो सकेगा।

२. द्विसन्धान महाकाव्य [संस्कृत-हिन्दी]

मूल : धनंजय कवि : सम्पादन-अनुवाद : प्रो० खुशालचन्द्र गोरावाला

रामायण और महाभारत की कथा को एक साथ कहने वाला एक अद्भुत महाकाव्य है। केवल मूल मात्र बहुत पहले निर्णयसागर प्रेस से प्रकाशित हुआ था। प्राचीन संस्कृत टीका और हिन्दी अनुवाद के साथ पहली बार प्रकाशित हो रहा है। लगभग पूरा ग्रन्थ ३२० पृष्ठ सुपर रायल साइज़ में छप चुका है, अनुक्रमणिका तथा प्रस्तावना शेष है। तैयार होते ही पाठकों को सुलभ हो सकेगा।

अन्य जो प्रकाशन प्रेस में चल रहे हैं—

३. षड्दर्शनसमुच्चय [संस्कृत-हिन्दी]

मूल : हरिभद्र सूरि : सम्पादन-अनुवाद : स्व० डॉ० महेन्द्रकुमार न्यायाचार्य

स्व० डॉ० महेन्द्रकुमार न्यायाचार्य ने हरिभद्र सूरि कृत षड्दर्शनसमुच्चय का सम्पादन कर के हिन्दी अनुवाद सहित संस्करण तैयार किया था। गुणरत्नसूरि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कृत तर्करहस्यदीपिका, मणिभद्रसूरि कृत लघुवृत्ति तथा अवचूर्णि के साथ इस का प्रकाशन हो रहा है।

४. शृंगारार्णवचन्द्रिका [संस्कृत]

मूल : शान्तिवर्णी : सम्पादन : डॉ॰ बी॰ एम॰ कुलकर्णी

यह अलंकार शास्त्र का एक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। डॉ॰ कुलकर्णी ने पहली वार इस का सम्पादन किया है। मूल ग्रन्थ क्राउन साइज़ के १४४ पृष्ठ में छप चुका है। केवल प्रस्तावना तथा कुछ परिशिष्ट शेष हैं। माणिकचन्द्र ग्रन्थमाला के पचासवें पुष्प के रूप में इस का प्रकाशन हो रहा है।

५. पउमचरिउ [अपभ्रंश-हिन्दी]

मूल : महाकवि स्वयंभू : हिन्दी-अनुवाद : डॉ॰ देवेन्द्रकुमार जैन

पउमचरिउ के तीन भाग पहले ज्ञानपीठ द्वारा प्रकाशित हो चुके हैं, उसी का शेष लगभग दो भाग और होगा। इसे भी मुद्रण में दे दिया गया है।

६. धर्मशर्माभ्युदय [संस्कृत-हिन्दी]

मूल : कवि हरिभद्र, सम्पादन-अनुवाद : पं॰ पन्नालाल साहित्याचार्य

धर्मशर्माभ्युदय मूल मात्र वहुत पहले निर्णयसागर प्रेस से छपा था। वाद में केवल हिन्दी अनुवाद ज्ञानपीठ से प्रकाशित हुआ। इस संस्करण में विद्वान् सम्पादक ने मूल के साथ प्राचीन संस्कृत टीका तथा हिन्दी अनुवाद भी दिया है। पाण्डुलिपि प्रेस में दी जा चुकी है।

पुनर्मुद्रण

मूर्तिदेवी ग्रन्थमाला में प्रकाशित निम्नलिखित ग्रन्थों के नये संस्करण पिछले वर्षों में प्रकाशित हुए हैं—

१. आदिपुराण भाग १
२. आदिपुराण भाग २
३. मदनपराजय
४. कुन्दकुन्दाचार्य के तीन रत्न
५. मंगलमन्त्रणमोकार : एक अनुचिन्तन
६. जैन धर्मामृत
७. महाबन्ध भाग १

ये नये संस्करण पहले संस्करणों के पुनर्मुद्रण मात्र नहीं हैं, प्रत्युत नये संस्करणों में पर्याप्त सुधार-संशोधन, परिवर्द्धन हुए हैं जिन के कारण पहले संस्करणों की अपेक्षा ये संस्करण और अधिक उपयोगी और महत्त्व के हो गये हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

८. उत्तरपुराण

९. समयसार

इन दोनों ग्रन्थों के नये संस्करण प्रेस में हैं। उत्तरपुराण छप कर लगभग तैयार हो गया है।

१०. तत्त्वार्थ-वृत्ति

११. सर्वार्थसिद्धि

१२. केवलज्ञानप्रश्नचूड़ामणि

१३. ज्ञानपीठ पूजांजलि

१४. पुराणसार संग्रह

ये ग्रन्थ नये संस्करण के लिए प्रेस में जाने को हैं। इन के अतिरिक्त माणिकचन्द्र ग्रन्थमाला के जो लगभग २० ग्रन्थ अप्राप्य हो गये हैं उन के प्रकाशन के विषय में भी विचार चल रहा है।

प्रस्तावित

१. **अष्टसहस्री [संस्कृत]**
   मूल : विद्यानन्द : सम्पादन : पं० दरबारीलाल कोठिया न्यायाचार्य

२. **परमाध्यात्मतरंगिणी [संस्कृत-हिन्दी]**
   मूल : अमृतचन्द्र सूरि : सम्पादन : अनुवाद : पं० कमलकुमार शास्त्री

३. **सुदर्शनचरित्र [संस्कृत पद्य]**
   मूल : विद्यानन्दि : सम्पादन : डॉ० हीरालाल जैन

४. **जम्बूस्वामीचरित्र [संस्कृत-पद्य]**
   मूल : ब्रह्म जिनदास : सम्पादन : डॉ० विमलप्रकाश जैन

५. **कथाकोश [संस्कृत]**
   मूल : प्रभाचन्द्र : सम्पादन : डॉ० आ० ने० उपाध्ये

६. **गीतवीतराग [संस्कृत]**
   मूल : अज्ञात : सम्पादन : डॉ० आ० ने० उपाध्ये

७. **धर्मपरीक्षा [संस्कृत]**
   सम्पादन : डॉक्टर आ० ने० उपाध्ये

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

८. वाग्भटालंकार [संस्कृत-हिन्दी]
मूल : वाग्भट : सम्पादन-अनुवाद : पं० अमृतलाल शास्त्री
९. नेमिनिर्वाणकाव्य [संस्कृत-हिन्दी]
मूल : वाग्भट : सम्पादन-अनुवाद : पं० अमृतलाल शास्त्री
१०. रामकथा [अपभ्रंश]
मूल : पुष्पदन्त : सम्पादन-अनुवाद : डॉ० देवेन्द्रकुमार जैन
११. हिन्दी जैन साहित्य का इतिहास
लेखक : डॉ० प्रेमसागर जैन
१२. आदिपुराण का सांस्कृतिक अध्ययन [शोध-प्रबन्ध]
लेखक : डॉ० सिद्धनाथ झा
१३. सोमदेव की राजनीति [शोध प्रबन्ध]
लेखक : डॉ० पुष्यमित्र जैन
१४. जैन थ्योरी ऑव् रिलीजन एण्ड इथिक्स [शोध-प्रबन्ध-अँगरेज़ी]
लेखक : डॉ० बी० बी० रायनाडे
१५. दिल्ली के जैन शास्त्र भण्डारों की सूची
संकलन-सम्पादन : पं० कुन्दनलाल जैन
१६. त्रिलोकसार [प्राकृत-हिन्दी]
मूल : नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती : सम्पादन-अनुवाद : प्रो० लक्ष्मीचन्द्र जैन
१७. भविसयत्तकहा तथा अपभ्रंश-कथाकाव्य [शोध-प्रबन्ध]
डॉ० देवेन्द्रकुमार शास्त्री
१८. संस्कृत काव्य के विकास में जैन कवियों का योगदान
[शोध-प्रबन्ध] : डॉ० नेमिचन्द्र शास्त्री
१९. अपभ्रंश भाषा और व्याकरण [शोध-प्रबन्ध]
डॉ० परममित्र शास्त्री
२०. अलंकार चिन्तामणि
मूल : अजितसेन : सम्पादन : डॉ० नेमिचन्द्र शास्त्री
२१. कलापव्याकरण
मूल : शर्ववर्म आचार्य : सम्पादन : पं० राजधरलाल शास्त्री

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लोकोदय ग्रन्थमाला

[इस ग्रन्थमाला के अन्तर्गत प्रकाशित जैन साहित्य]

मुक्तिदूत [हिन्दी] : वीरेन्द्रकुमार जैन

अंजना और पवनंजय की प्रेम-कथा को आधार मान कर लिखा गया एक सरस, मृदु और मोहक पौराणिक रोमांस, जिस के विषय में जैनेन्द्रकुमार ने लिखा—इतना सचित्र और मनोरम वर्णन हिन्दी में मैं ने अन्यत्र देखा है, ऐसा याद नहीं पड़ता। प्रसाद के बाद यह शोभा और श्री गद्य में मैं ने वीरेन्द्र में ही पायी। द्वितीय संस्करण, क्राउन साइज़, पृष्ठ-संख्या ३३६। मूल्य पाँच रुपये

वर्द्धमान [हिन्दी] : अनूप शर्मा

यशस्वी कवि के इस महाकाव्य में जन-गण-मन अधिनायक भगवान् महावीर की ऐसी अनूठी प्रतिमा मूर्त हुई है, जिस के अभाव में माँ भारती का मन्दिर अब तक सूना-सूना लग रहा था। कृति इतनी अनुपम है कि उत्तरप्रदेश सरकार-द्वारा पुरस्कृत भी हुई है। प्रथम संस्करण, क्राउन साइज़, पृष्ठ-संख्या ५८५।

मूल्य छह रुपये

जैन जागरण के अग्रदूत [हिन्दी] : अयोध्याप्रसाद गोयलीय

बीसवीं शती के दिवंगत और वयोवृद्ध प्रमुख दिगम्बर जैन कर्मठ कार्य-कर्ताओं के संस्मरण एवं सचित्र परिचय जो कहानी से रोचक, हितोपदेश से प्रेरक और सिद्धान्त-वचनों की तरह उद्बोधक हैं। प्रथम संस्करण, क्राउन साइज़, पृष्ठ-संख्या ६१९। मूल्य पाँच रुपये

खण्डहरों का वैभव [हिन्दी] : मुनि कान्तिसागर

भारतीय पुरातत्त्व विशेष कर जैन पुरातत्त्व का स्वयं निरीक्षण-परीक्षण करके लिखा गया विवेचन जो जितना प्रामाणिक है उतना ही सरस और रोचक भी। द्वितीय संस्करण, क्राउन साइज़, पृष्ठ-संख्या ४३२। मूल्य छह रुपये

खोज की पगडण्डियाँ [हिन्दी] : मुनि कान्तिसागर

प्रस्तुत पुस्तक में ललितकला, लिपि तथा भौगोलिक यात्रा शीर्षक तीन भागों में जैनाश्रित और बौद्धधर्माश्रित चित्रकला पर जहाँ सामग्री दी गयी है

७

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वहीं नालन्दा और विन्ध्याचल की यात्रा भी मनोरंजन के साथ-साथ खोज की पगडण्डियाँ प्रशस्त करती हैं। द्वितीय संस्करण, क्राउन साइज़, पृष्ठ-संख्या २९१।

मूल्य चार रुपये

अध्यात्मपदावली [हिन्दी] : सं० डॉ० राजकुमार जैन

प्राचीन जैन कवियों के ६७ आध्यात्मिक पदों का संकलन और व्याख्या, जिन में भक्ति और ज्ञान का भव्य रूप अंकित हुआ है। पदों की भावात्मक पृष्ठभूमि, विचारों की सात्त्विकता, आत्मनिष्ठ अनुभूति की गहराई, अभिव्यक्ति की सुघराई, इनकी सरलता, शालीनता और सरसगेयता सब भव्य हैं। द्वितीय संस्करण, क्राउन साइज़, पृष्ठ-संख्या ३६८। मूल्य चार रुपये पचास पैसे

हिन्दी जैन साहित्य परिशीलन [हिन्दी] : भाग १-२
डॉ० नेमिचन्द्र जैन

हिन्दी भाषा में लिखित जैन साहित्य-महाकाव्य, खण्डकाव्य, नीतिकाव्य, गद्य-काव्य का सर्वप्रथम तुलनात्मक और विश्लेषणात्मक विवेचन-परिचय। भाग १, प्रथम संस्करण, क्राउन साइज़, पृष्ठ-संख्या २५८। भाग २, प्रथम संस्करण, क्राउन साइज़, पृष्ठ-संख्या २५९।

मूल्य पाँच रुपये

भारतीय इतिहास : एक दृष्टि [हिन्दी] : डॉ० ज्योतिप्रसाद जैन

जैन ऐतिहासिक सामग्री के आधार पर लिखा गया एक ऐसा ग्रन्थ जिस में भारतीय इतिहास के उन दुर्लभ सन्दर्भों का यथा-स्थान उल्लेख किया गया है जिन्हें भारतीय इतिहास-लेखकों ने अभी तक सुनियोजित ढंग से देखा तक नहीं था। प्रथम संस्करण, क्राउन साइज़, पृष्ठ-संख्या ७१५। मूल्य आठ रुपये

जैन भक्ति-काव्य की पृष्ठभूमि [हिन्दी] : डॉ० प्रेमसागर जैन

साहित्यिक, दार्शनिक, धार्मिक ग्रन्थ तथा पुरातत्त्व और कला की साक्षीपूर्वक जैन भक्ति-काव्य का वैदिक और बौद्ध भक्ति-काव्यों के साथ तुलनात्मक एवं समालोचनात्मक अध्ययन। अपने प्रकार की सर्वप्रथम पुस्तक। डिमाई साइज़, पृष्ठ-संख्या २३ + २२३।

मूल्य छह रुपये

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हिन्दी जैन भक्ति-काव्य और कवि [हिन्दी] : डॉ० प्रेमसागर जैन

हिन्दी के उन अनेक विशिष्ट जैन कवियों के जीवन और साहित्य का परिचय-विवेचन, जिन का हिन्दी भक्ति-काव्य की विपुल निधि में मूल्यवान् योगदान है पर जो अभी तक प्रायः अज्ञात रहे। प्रथम संस्करण, डिमाई साइज़, पृष्ठ-संख्या २२ + ५०७।

मूल्य बारह रुपये

अपभ्रंश भाषा और साहित्य : डॉ० देवेन्द्रकुमार जैन

भारतीय वाङ्मय में अपभ्रंश भाषा और साहित्य का महत्त्वपूर्ण स्थान है। छठी से ग्यारहवीं शती तक 'देशी' या लोकभाषा के रूप में प्रचलित इस भाषा में तत्कालीन अनेक ग्रन्थ लिखे गये।

प्रस्तुत कृति अपभ्रंश भाषा, उसका युग और-स्रोत, अपभ्रंश कवि और अपभ्रंश काव्यों का तो परिचय कराती ही है, अपभ्रंश काव्यों में वर्णित प्रकृति-चित्रण, समाज और संस्कृति के तात्कालिक परिवेश तथा दार्शनिक मत-मान्यता आदि की भी जानकारी देती है।

सम्पूर्ण विशाल अपभ्रंश साहित्य का अध्ययन कोई भले ही न कर पाये पर उस का परिचय पाना और रसास्वादन प्राप्त करना हो तो प्रस्तुत कृति पढ़ना अनिवार्य है।

मूल्य दस रुपये

कविवर बनारसीदास : डॉ० रवीन्द्रकुमार जैन

भक्तिकालीन हिन्दी साहित्य के निर्माण में जैन साहित्यकारों का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। कविवर बनारसीदास भक्तिकालीन जैन साहित्यकारों में अग्रगण्य थे। प्रस्तुत कृति उन्हीं के व्यक्तित्व और कृतित्व का शोधक और समीक्षक दृष्टि से किया गया एक ऐसा समग्र अध्ययन है जो कवि के जीवन के हर पहलू को उजागर करता है।

मूल्य दस रुपये

भाव और अनुभाव [हिन्दी] : मुनि नथमल

ज्ञान, अनुभूति और तप की त्रिवेणी से उद्भूत सूक्ति रत्नाकर जो जितना सरस, सौम्य और व्यापक है उतना ही प्रेरक, उद्बोधक और सरल जीवन का समीचीन पाथेय भी। प्रथम संस्करण, क्राउन साइज, पृष्ठ-संख्या १२०।

मूल्य एक रुपया पचास पैसे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कन्नड़ ग्रन्थमाला

सांस्कृतिक और साहित्यिक प्रकाशन के क्षेत्र में भारतीय ज्ञानपीठ का योगदान, और उस की उपलब्धियाँ सर्वविदित हैं। अपने उद्देश्यों को दृष्टि में रखते इधर उस ने एक नयी योजना को रूप दिया है। इस के अन्तर्गत महत्त्वपूर्ण कन्नड़ शास्त्रीय ग्रन्थों के टीकासहित संस्करण प्रकाशित किये जायेंगे जिन में मूलपाठ के साथ प्रचलित कन्नड़ में शब्दशः पर प्रवाहमय अनुवाद भी दिया होगा। योजना यहाँ तक है कि यथासमय इन ग्रन्थों को हिन्दी तथा अन्य भाषाओं में भी प्रस्तुत किया जाये।

इस समय निम्नलिखित बारह ग्रन्थों को सम्पादन-प्रकाशन के लिए चुना गया है—

(१) पम्पकृत 'भारत अथवा विक्रमार्जुन-विजय'
(२) योन्नकृत 'शान्तिनाथपुराण'
(३) रन्नकृत 'गदायुद्ध'
(४) रन्नकृत 'अजितनाथ पुराण'
(५) नयसेनकृत 'धर्मामृत'
(६) नाग चन्द्रकृत 'मल्लिनाथपुराण'
(७) जन्नकृत 'अनन्तनाथपुराण'
(८) जन्नकृत 'यशोधराचरित'
(९) आण्णाय्यकृत 'कब्बिगर कात्र'
(१०) नागराजकृत 'पुण्यास्त्रव'
(११) नागचन्द्रकृत 'रामचरित'
(१२) पम्पकृत 'आदिपुराण'।

इन संस्करणों की रूपरेखा आदि निर्धारित करने में ग्रन्थमाला सम्पादकों डॉ० हीरालाल जैन और डॉ० ए० एन्० उपाध्ये ने प्रायः सभी प्रमुख कन्नड़ विद्वानों से परामर्श किया है। इन में उल्लेखनीय नाम हैं: प्रो० एम० एम० भट, मद्रास; श्री एच० देवीरप्पा, मैसूर; प्रो० के० एस् धरणेन्द्रय्या; बंगलौर; डॉ० आर० सो० हिड़ेमठ, धारवाड़; प्रो० के० जी० कुण्डंगर बेलगाँव; श्री अण्णाराव मीरंजी, शेदबल; डॉ० आर० एस्० मुगली, सांगली; प्रो० डी० एल्० नरसिंहाचार, मैसूर; श्री डी० पुट्रस्वामी, मंगलौर; पं० के० बी० शास्त्री, मूडबिद्री; प्रो० टी० एन्० श्रीकान्तय्या, मैसूर। इन सब विद्वानों ने परामर्श समिति में भी रहना स्वीकार किया है।

योजना की विस्तृत रूपरेखा भारतीय ज्ञानपीठ के प्रधान कार्यालय से प्राप्त की जा सकती है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश

एक अनुपम उपलब्धि : सुखद आश्चर्य

यह वास्तव में एक सुखद आश्चर्य की बात है कि जो कार्य अनेक विद्वान् कई वर्षों तक लग कर सम्पन्न कर पाते उसे एक ही साधक ने ६ वर्षों की अनवरत तन्मयता के फलस्वरूप अकेले सम्पन्न किया है। भारतीय संस्कृति और साहित्य—विशेषकर जैन सिद्धान्त, धर्म, दर्शन और संस्कृति के प्रत्येक अध्येता, प्रेमी एवं प्रशंसक व्यक्ति के लिए यह एक विशेष कृतज्ञता का विषय है कि श्रद्धेय क्षुल्लक जिनेन्द्र वर्णी ने ऐसी बहुमूल्य और अद्भुत निधि उन्हें प्रदान की।

जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश

जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश शब्द-कोश तथा विश्वकोशों की परम्परा में एक अपूर्व व विशिष्ट कृति है। इस में जैन तत्त्वज्ञान, आचार-शास्त्र, कर्मसिद्धान्त, भूगोल, ऐतिहासिक तथा पौराणिक व्यक्ति, राजपुरुष तथा राजवंश, आगम शास्त्र व शास्त्रकार, धार्मिक तथा दार्शनिक सम्प्रदाय आदि से सम्बन्धित छह हज़ार से अधिक शब्दों एवं बीस हज़ार से अधिक विषयों का सांगोपांग विवेचन किया गया है। इस की महत्ता और उपयोगिता इस लिए और भी बढ़ जाती है, क्योंकि यह विवेचन संस्कृत, प्राकृत तथा अपभ्रंश भाषा में लिखित प्राचीन जैन साहित्य के सौ से अधिक महत्त्वपूर्ण एवं प्रामाणिक ग्रन्थों से संकलित मूल सन्दर्भों, उद्धरणों तथा हिन्दी अनुवाद के साथ प्रस्तुत किया गया है।

शब्द संकलन तथा विषय विवेचन

प्रस्तुत कोश में शब्दों का चयन कोश ग्रन्थों की शैली पर अकारादि क्रम से किया गया है तथा मूल शब्द के अन्तर्गत उस से

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सम्बन्धित विभिन्न विषयों का विवेचन किया गया है। ऐतिहासिक क्रम से मूल ग्रन्थों के सन्दर्भ संकेत उद्धरण तथा उन का हिन्दी अनुवाद दे कर विषय को इस रूप में प्रस्तुत किया गया है कि विभिन्न ग्रन्थों में उपलब्ध उस विषय की सम्पूर्ण सामग्री एक साथ उपलब्ध हो जाये, और अनुसन्धाता विद्वानों, स्वाध्याय प्रेमी मनीषियों तथा साधारण पाठकों के लिए एक विशिष्ट संदर्भ-सागर ग्रन्थ का काम दे।

यह कोश अनुसन्धाता विद्वानों को दार्शनिक, सैद्धान्तिक व भौगोलिक विषयों की विस्तृत सामग्री तथा ऐतिहासिक अनुसन्धानों के लिए जैन साहित्य व साहित्यकारों का, शास्त्रों व आचार्यों की परम्परा का परिचय प्रदान करता है। लेखकों व प्रवक्ताओं को विभिन्न विषयों की संपुष्टि के लिए अनेकों अकाट्य शास्त्रीय प्रमाण देता है। स्वाध्याय प्रेमियों के लिए यत्र-तत्र बिखरे हुए विशाल शास्त्रीय विषयों का एक ही स्थल पर संकलित क्रमबद्ध सार प्रस्तुत करता है। मनीषी जनों को शंका निवारणार्थ अनेकों युक्तियुक्त समाधान देता है, और उभय नय विवेचन व उन का समन्वय एक ही स्थल पर दे कर जिज्ञासुओं को प्रकाश प्रदान करता है। विभिन्न उपदेशों को सुन कर उलझन में पड़े हुए साधकों को सरलता व समता देता है और दार्शनिक जगत् में फैले हुए विभिन्न मन्तव्यों को एक सूत्र में पिरो कर एक अखण्ड सुविशाल सुन्दर समायोजित तत्त्व का दर्शन कराता है।

सारणियां एवं चित्र

प्रस्तुत कोश की यह निजी विशेषता है कि विषय के भेद-प्रभेदों, करणानुयोग के विभिन्न विषयों तथा भूगोल से सम्बन्धित विषयों को रेखाचित्रों, सारणियों तथा सादे एवं रंगीन चित्रों-द्वारा सरलतम रूप में इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है कि विशालकाय ग्रन्थों

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

की बहुमूल्य सामग्री सीमित स्थान में चित्रांकित की तरह एक ही दृष्टि में सामने आ जाती है। मार्गणास्थान, गुणस्थान, जीवसमास, कर्मप्रकृतियाँ, ओघ और आदेशप्ररूपणाएँ, जीवों की अवगाहना, आयु आदि का विवरण त्रेसठ शलाका पुरुषों की जीवनियों का ब्यौरेवार विवरण, उत्कर्षण, अपकर्षण, अधःकरण, अपूर्वकरण आदि का सूक्ष्म एवं गूढ विवेचन, जैन मान्यतानुसार तीन लोकों का आकार, स्वर्ग और नरक के पटल, मध्यलोक के द्वीप, समुद्र, पर्वत, नदियाँ आदि को लगभग तीन सौ सारणियों एवं मनोहारी चित्रों द्वारा अत्यन्त सरल एवं सुरुचिपूर्ण ढंग से प्रस्तुत किया गया है।

सन्दर्भ ग्रन्थ : असंदिग्ध प्रामाणिकता

जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश की एक बड़ी विशेषता यह है कि इस में जैन साहित्य के लगभग सौ सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण एवं प्रामाणिक ग्रन्थों से उद्धरणों को इस प्रकार संकलित किया गया है कि इन ग्रन्थों का विषय-सार यथा-स्थान प्राप्त हो जाता है। यह इस की एक अपनी विशेषता है कि संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश उद्धरणों का हिन्दी अनुवाद भी उन-उन ग्रन्थों के विद्वान् सम्पादकों का ही उद्धृत किया गया है। जिन ग्रन्थों का उपयोग किया है वे ये हैं—अमितगति श्रावकाचार, अनगार धर्मामृत, आत्मानुशासन, आलाप पद्धति, आप्त परीक्षा, आप्त मीमांसा, इष्टोपदेश, कषायपाहुड, कार्तिकेयानुप्रेक्षा, कुरलकाव्य, क्रियाकलाप, क्रियाकोश, क्षपणसार, गुणभद्र श्रावकाचार, गोम्मटसार कर्मकाण्ड, ज्ञानार्णव, ज्ञानसार, चारित्त पाहुड, चारित्रसार, जंबूदीप पण्णत्ति संगहो, तत्त्वानुशासन, तत्त्वार्थवृत्ति, तत्त्वार्थसार, तत्त्वार्थ सूत्र, तिल्लोय पण्णति, त्रिलोकसार, दर्शनपाहुड, दर्शनसार, द्रव्यसंग्रह, धर्मपरीक्षा, धवला पुस्तक, बृहद् नय चक्र, नय चक्र, नियमसार, नियमसार-तात्पर्य वृत्ति, न्यायदीपिका, न्यायबिन्दु, न्यायविनिश्चय, न्यायदर्शन सूत्र, पंचास्तिकाय, पंचाध्यायी-पूर्वार्ध, पंचाध्यायी उत्तरार्ध, पद्मनन्दि पंचविंशतिका,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पंचसंग्रह-प्राकृत, पंचसंग्रह संस्कृत, पद्मपुराण, परीक्षामुख, परमात्म-प्रकाश, पाण्डवपुराण, पुरुषार्थ सिद्ध्युपाय, प्रवचनसार, प्रतिष्ठा-सारोद्धार, बारस अणुवेक्खा, बोधपाहुड, भगवती आराधना, भाव-पाहुड, महापुराण, महाबन्ध, मूलाचार, मोक्षपंचाशिका, मोक्षपाहुड, मोक्षमार्ग प्रकाशक, युक्त्यनुशासन, योगसार अमितगति, योगसार योगेन्दुदेव, रत्नकरण्डश्रावकाचार, रयणसार, राजवार्तिक, लब्धि-सार, लाटी संहिता, लिंग पाहुड, वसुनन्दि श्रावकाचार, वैशेषिक-दर्शन, शीलपाहुड, श्लोकवार्तिक, षट्खण्डागम, सप्तभंगी तरंगिणी, स्याद्वादमंजरी, समाधि शतक, समयसार, सर्वार्थसिद्धि, स्वयम्भू स्तोत्र, सागारधर्मामृत, सामायिक पाठ अमितगति, सिद्धान्त सार संग्रह, सिद्धिविनिश्चय, सुभाषितरत्नसंदोह, सूत्र पाहुड, हरिवंशपुराण।

मुद्रण प्रस्तुति

इस महत्त्वपूर्ण एवं बहुमूल्य कृति का वैशिष्ट्य इस लिए और भी बढ़ जाता है कि इस की मुद्रण प्रस्तुति अब तक प्रकाशित कोशों या विश्वकोशों से सर्वथा विशिष्ट है। ग्रन्थ में सब छह प्रकार के टाइपों का उपयोग इस तरह किया गया है कि मूल शब्द विषय शीर्षक, उपशीर्षक, अन्तर शीर्षक, अन्तरान्तर शीर्षक तथा सन्दर्भ संकेत, उद्धरण और हिन्दी अर्थ एक ही दृष्टि में स्वतन्त्र रूप में स्पष्ट ज्ञात हो जाते हैं। सामग्री का समायोजन भी वर्गीकृत रूप में इस प्रकार प्रस्तुत है कि टाइपों का इतना वैभिन्न्य होते हुए भी मुद्रण का सौन्दर्य निखरा है। सारणियों और रेखाचित्रों की प्रस्तुति तो और भी अद्भुत है कि बहुत ही कम स्थान में अधिकतम सामग्री समाहित कर दी गयी है। नमूने के रूप में आगे मुद्रित सामग्री से कोश की विषय वस्तु, संकलन पद्धति, सन्दर्भों की प्रामाणिकता, सारणी तथा चित्रों का स्वरूप, मुद्रण-प्रस्तुति आदि का आभास मिलेगा।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ग्रन्थ का परिमाण और अनुमानित प्रकाशन व्यय आदि

यह विशालकाय ग्रन्थ सुपर रायल साइज के लगभग तीन हजार पृष्ठों में मुद्रित होगा और एक-एक हजार पृष्ठ की तीन-जिल्दों में पाठकों के लिए उपलब्ध होगा। पहले भाग का मुद्रण प्रारम्भ हो चुका है और आशा है कि शीघ्र तैयार होगा। पूरे ग्रन्थ के मुद्रण प्रकाशन पर भारतीय ज्ञानपीठ की एक बड़ी राशि व्यय होगी फिर भी बहुमूल्य कृति अधिक से अधिक पाठकों को उपलब्ध हो सके इस उद्देश्य से पूरे सेट का मूल्य एक सौ पचास रुपया मात्र रखा गया है। पूरे सेट के लिए अग्रिम ऑर्डर के साथ यह राशि हमारे विक्रय कार्यालय के पते भेजें।

One can today call Murtidevi Jain Granthamala one of the best text series, which have been published in India. This is due to the effort, which is always apparent in all the publications, to present the pertiuent material as completely as possible, the conscientious reference to the available manuscripts, the careful presentation of the different versions, the voluminous indices and the introductions, which, in spite of being rich in contents, do not go beyond the scope of the published text. One may be permitted to give the credit of this to both the general Editors, Dr. Hiralal Jain and Dr. A.N. Upadhye.

—*Prof. Dr.E. Frauwallner, Austria.*

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

I. विषय व सन्दर्भ संकलन विधि

अस्थि—१. औदारिक शरीरोंमें अस्थियों का प्रमाण—दे० औदारिक/१। २. इनमें षट्काल कृत वृद्धि ह्रास —दे० काल/४।

अस्थिर—दे० स्थिर।

अस्नान—साधुका एक मूल गुण—दे० स्नान।

अहंकार—त. अनु/१५ ये कर्मकृता भावा परमार्थ-नयेन चात्मनो भिन्नाः। तत्रात्माभिनिवेशोऽहंकारोऽहं यथा नृपतिः।=कर्मोंके द्वारा निर्मित जो पर्यायें हैं और निश्चय नयसे जो आत्मासे भिन्न हैं, उनमें आत्माका जो मिथ्या आरोप है, उसका नाम अहंकार है, जैसे—मैं राजा हूँ।

प्र.सा./ता.वृ./६४/१४ मनुष्यादिपर्यायरूपोऽहमित्यहंकारो भण्यते।=(भाषानुवाद)

द्र० सं०/टी०/४१/१६६/१ (उपरोक्तवत् मूल व अनुवाद)

अहंक्रिया—(उपरोक्तवत् ही)

अहमिन्द्र—दे० इन्द्र।

वर्णानुक्रमसे शब्दोंकी संकलन-विधिके पश्चात् अब विषयविस्तार-विधिका परिचय देनेके लिए क्रमानुगत 'अहिंसा'का विषय प्रस्तुत किया जाता है।

अहिंसा—जैन धर्म अहिंसा-प्रधान है, पर अहिंसाका क्षेत्र इतना संकुचित नहीं है, जितना कि लोकमें समझा जाता है। इसका व्यापार बाहर व भीतर दोनों ओर होता है। बाहरमें तो किसी भी छोटे या बड़े जीवको अपने मनसे या वचनसे या कायसे, किसी प्रकारकी भी हीन या अधिक पीड़ा न पहुँचाना तथा उसका दिल न दुखाना अहिंसा है, और अन्तरंगमें राग द्वेष परिणामोंसे निवृत्त होकर साम्यभावमें स्थिर होना अहिंसा है। बाह्य अहिंसाको व्यवहार और अन्तरंगको निश्चय कहते हैं।

वास्तवमें अन्तरंगमें आंशिक साम्यता आये बिना अहिंसा सम्भव नहीं, और इस प्रकार इसके अति व्यापक रूपमें सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य आदि सभी सद्गुण समा जाते हैं। इसीलिए अहिंसाको परमधर्म कहा जाता है। जल, थल आदिमें सर्वत्र ही क्षुद्र जीवोंका सद्भाव होनेके कारण यद्यपि बाह्यमें पूर्ण अहिंसा पलनी असम्भव है, पर यदि अन्तरंगमें साम्यता और बाहरमें पूरा-पूरा यत्नाचार रखनेमें प्रमाद न किया जाय तो बाह्य जीवोंके मरनेपर भी साधक अहिंसक ही रहता है।

१. अहिंसा निर्देश

*** निश्चय अहिंसाका लक्षण—**

दे० अहिंसा/२/१।

१. अहिंसा अणुव्रतका लक्षण

र.क.श्रा./५३ संकल्पात् कृतकारितमननाद्योगत्रयस्य चरसत्त्वान्। न हिनस्ति यत्तदाहुः स्थूलवधाद्विरमणं निपुणः॥५३॥ =मन वचन कायके संकल्पसे कृत कारित अनुमोदनासे त्रस जीवोंको जो नहीं हनता, उस क्रियाको गणधरादिक निपुण पुरुष स्थूल हिंसासे विरक्त होना अर्थात अहिंसाणुव्रत कहते हैं। (स.सि./७/२०/३५८/७); (रा.वा./७/२०/१/५४७/६); (सा.ध./४/७)।

वसु.श्रा/२०६..............................

का.अ./मू./३३१-३३२....................

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

२. अहिंसा महाव्रतका लक्षण

मू.आ./५,२८९ कायेंदियगुणमग्गणकुलाउजोणीसु सव्वजीवाणं। णाऊण य ठाणादिसु हिंसादिविवज्जणमहिंसा ॥५॥ एइंदियादिपाणा पंचविधावज्जभीरुणा सम्मं। ते खलु ण हिंसिदव्वा मणवचिकायेण सव्वत्थ ॥२८९॥ =काय, इन्द्रिय, गुणस्थान, मार्गणास्थान, कुल, आयु, योनि—इनमें सब जीवोंको जानकर कायोत्सर्गादि क्रियाओंमें हिंसा आदिका त्याग करना अहिंसा महाव्रत है ॥५॥ सब देश और सब कालमें मन वचन कायसे एकेन्द्रियसे लेकर पंचेन्द्रिय प्राणियोंके प्राण पाँच प्रकारके पापोंसे डरने वालेको नहीं घातने चाहिए, अर्थात् जीवोंकी रक्षा करना अहिंसाव्रत है॥२८९॥ (नि.सा/मू./५६)।

३. अहिंसाणुव्रतके पाँच अतिचार

त.सू./७/२५ बन्धवधच्छेदातिभारारोपणान्नपाननिरोधाः॥२५॥ =बन्ध, वध, छेद, अतिभारारोपण, अन्नपानका निरोध, ये अहिंसाणुव्रतके पाँच अतिचार हैं।

सा.ध./४/११·································

४. अहिंसा महाव्रतकी भावनाएँ

त.सू./७/४ वाङ्मनोगुप्तीर्यादाननिक्षेपणसमित्यालोकितपानभोजनानि पञ्च ॥४॥= वचनगुप्ति, मनोगुप्ति, ईर्यासमिति, आदान निक्षेपण समिति और आलोकित पानभोजन (अर्थात् देख-शोध कर भोजन पान ग्रहण करना) ये अहिंसाव्रतकी पाँच भावनाएँ हैं। (मू.आ./३३७); (चा.पा /मू./३१)।

५. अहिंसा अणुव्रतकी भावनाएँ

स.सि./७/९/३४७/३ हिंसायां तावत्, हिंस्रो हि नित्योद्वेजनीयः सततानुबद्धवैरश्च इह च वधबन्धपरिक्लेशादीन् प्रतिलभते प्रेत्य चाशुभां गतिं गर्हितश्च भवतीति हिंसाया व्युपरमः श्रेयान्।···एवं हिंसादिष्वपायावद्यदर्शनं भावनीयम्।=हिंसामें यथा—हिंसक निरन्तर उद्वेजनीय है, वह सदा वैरको बाँधते रहता है, इस लोकमें वध बन्ध और क्लेश आदिको प्राप्त होता है, तथा परलोकमें अशुभ गतिको प्राप्त होता है, और गर्हित भी होता है, इसलिए हिंसाका त्याग श्रेयस्कर है।···इस प्रकार हिंसादि दोषोंमें अपाय और अवद्यके दर्शनको भावना करनी चाहिए।

★ व्रतोंकी भावना व अतिचार—

दे० व्रत/२।

★ साधु जन पशु पक्षियोंका मार्ग छोड़कर गमन करते हैं—दे० भिक्षा/२

२. निश्चय अहिंसाकी कथंचित् प्रधानता

१. प्रमाद व रागादिका अभाव ही अहिंसा है

भ.आ./मू./८०३,८०६ अत्ता चेव अहिंसा अत्ता हिंसेत्ति णिच्छओ समये। जो होदि अप्पमत्तो अहिंसगो हिंसगो इदरो ॥८०३॥ जदि सुद्धस्स य बंधो होहिदि बाहिरंगवत्थुजोगेण। णत्थि दु अहिंसगो णाम होदि वायादिवधहेदु ॥८०६॥ =आत्मा ही हिंसा है और वह ही अहिंसा है, ऐसा जिनागममें निश्चय किया है। अप्रमत्तको अहिंसक और प्रमत्तको हिंसक कहते हैं ।।८०३।। यदि रागद्वेष रहित आत्माको भी बाह्य वस्तुमात्रके सम्बन्धसे बन्ध होगा, तो 'जगतमें कोई भी अहिंसक नहीं है', ऐसा मानना पड़ेगा, क्योंकि, मुनिजन भी वायुकायिकादि जीवोंके वधके हेतु हैं ।।८०६।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स.सि./७/२२/३६३/१० पर उद्धृत—रागादीणमणुप्पा अहिंसगत्तं त्ति देसिदं समये। तेसिं चे उप्पत्ती हिंसेत्ति जिणेहि णिद्दिट्ठा।=शास्त्रमें यह उपदेश है कि रागादिकका नहीं उत्पन्न होना अहिंसा है। तथा जिनदेवने उनकी उत्पत्तिको हिंसा कहा है। (क.पा.१/१/गा.४२/१०२), (पु.सि.उ./४४), (अन.ध./४/२६)।

ध.१४/५,६,९३/५/९० स्वयं ह्यहिंसा स्वयमेव हिंसनं न तत्पराधीनमहं द्वयं भवेत्। प्रमादहीनोऽत्र भवत्यहिंसकः प्रमादयुक्तस्तु सदैव हिंसकः ॥५॥ (भाषानुवाद)।

प्र.सा./त.प्र./२१७-२१८ अशुद्धोपयोगसद्भावस्य सुनिश्चितहिंसाभावप्रसिद्धेस्तथा तद्विनाभाविना प्रयताचरेण प्रसिद्धयदशुद्धोपयोगासद्भावपरस्य परप्राणव्यपरोपसद्भावेऽपि बन्धाप्रसिद्धया सुनिश्चितहिंसाभावप्रसिद्धेश्चान्तरङ्ग एव छेदो बलीयान् न पुनर्बहिरङ्गः ॥२१७॥···यदशुद्धोपयोगासद्भावः···निरुपलेपत्व प्रसिद्धेरहिंसक एव स्यात ॥२१८॥ (भाषानुवाद) (नि.सा./ता.वृ./५६) (अन.ध./४/२३)।

पु.सि.उ./५१ (उपरोक्तवत् ही मूल व भाषानुवाद)।

२. निश्चय अहिंसाके बिना अहिंसा सम्भव नहीं

नि.सा./ता.वृ./५६ तेषां मृतिर्भवतु वा न वा प्रयत्नपरिणाममन्तरेण सावद्यपरिहारो न भवति। =उन (बाह्य प्राणियों) का मरण हो या न हो प्रयत्नरूप परिणामके बिना सावद्य परिहार नहीं होता।

प्र.प्र./टी./२/६८ अहिंसालक्षणो धर्मः, सोऽपि जीवशुद्धभावं विना न संभवति।=धर्म अहिंसा लक्षणवाला है, और वह अहिंसा जीवके शुद्ध भावके बिना सम्भव नहीं।

३. परकी रक्षा आदि करनेका अहंकार अज्ञान है

स.सा./मू./२५३ जो अप्पाणं दु मण्णदि दुक्खिदसुहिदे करेमि सत्ते ति। सो मूढो अण्णाणी णाणी एतो दु विवरीदो। =(भाषानुवाद)।

४. अहिंसा सिद्धान्त स्व-रक्षार्थ है न कि पर-रक्षार्थ

पं.ध./उ./७५६ आत्मेतराङ्गिणामङ्गरक्षणं यन्मतं स्मृतौ। तत्परं स्वात्मरक्षायाः कृतेनातः परत्र तत्। =(भाषानुवाद)।

३. अहिंसा व्रतकी कथंचित् प्रधानता

१. अहिंसा व्रतका माहात्म्य

भ.आ./मू./८२२·························

ज्ञा./८/३२ ·····························

अ.ग.श्रा./११/५··························

भा.पा./टी./१३४/२८३ पर उद्धृत··········

२. सर्व व्रतोंमें अहिंसा व्रत ही प्रधान है

(पाँच शास्त्रीय सन्दर्भ दिये गये हैं।)

३. व्रत बिना अहिंसक भी हिंसक है

(दो शास्त्रीय सन्दर्भ दिये गये हैं)।

४. निश्चय व्यवहार अहिंसा समन्वय

१. सर्वत्र जीवोंके सद्भावमें अहिंसा कैसे पले

भ.आ./मू./१०१२-१०१३ कधं चरे कधं चिट्ठे कधमासे कधं सये। कधं भुंजेज्ज भासिज्ज

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कधं पावं ण बज्झदि ।१०१२। जदं चरे जदं चिट्ठे जदमासे जदं सये। जदं भुंजेज्ज भासेज्ज एवं पावं ण बज्झई ।१०१३। =प्रश्न—इस प्रकार कहे गये क्रमकर जीवों-से भरे इस जगत्में साधु किस तरह गमन करे, कैसे तिष्ठै, कैसे बैठे, कैसे भोजन करे, कैसे बोले, कैसे पापसे न बन्धे ? उत्तर—यत्नाचारसे गमन करे, यत्नसे तिष्ठे, पीछी से शोधकर यत्नसे बैठे, शोधकर रात्रिमें यत्नसे सोवे, यत्नसे दोष रहित आहार करे, भाषा समिति पूर्वक यत्नसे बोले। इस प्रकार पापसे नहीं बन्ध सकता।

रा.वा./७/१३/१२/५४१/५में उद्धृत "जले जन्तुः स्थले जन्तुराकाशे……

स्वा.ध./४/२२-२३……

२. निश्चय अहिंसाको अहिंसा कहने-का कारण—

प.प्र./टी./१२५ रागाद्यभावो निश्चयेनाहिंसा भण्यते। कस्मात्। निश्चयशुद्धचैतन्यप्राणस्य रक्षाकारणात्। =रागादिके अभावको निश्चयसे अहिंसा कहते हैं, क्योंकि, यह निश्चय शुद्ध चैतन्य प्राणकी रक्षाका कारण है।

★ **अन्तरंग व बाह्य हिंसाका समन्वय** —(दे० हिंसा)।

II. शीर्षक व सूचीपत्र क्रमविधि

विषय शीर्षकोंकी क्रम व्यवस्था स्वयं उस विषयका एक शृंखलाबद्ध रूप दर्शानेको पर्याप्त है। इस विशेषता-का परिचय देनेके लिए यहाँ कोष-निबद्ध 'अनेकान्त'विषयक सूचीके शीर्षकोंको शृंखलाबद्ध रूपमें लिख-कर दर्शाया जाता है।

१. अनेकान्तके भेद व लक्षण—(वस्तुके अनेक विरोधी धर्मोंमें मैत्री कराना) अनेकान्तका लक्षण है। (२-३) सम्यक् व मिथ्या तथा (४) क्रम व अक्रमके भेदसे वह दो प्रकारका है।

२. अनेकान्त निर्देश—१-२ वह छल व संशयवाद नहीं है; * बल्कि प्रमाण स्वरूप है। ३. उसके बिना वस्तुकी सिद्धि नहीं होती (इसलिए), ४. किसी न किसी रूप में सबको अनेकान्त मानना ही पड़ता है। ५. वह स्वयं अनेकान्तात्मक है; ६. क्योंकि उसमें सर्व एकान्त रहते हैं, परन्तु एकान्त-में अनेकान्त नहीं रहता। ७. निरपेक्ष नयोंका समूह अनेकान्त नहीं है। ८. अने-कान्त व एकान्तका परस्पर समन्वय करके देखें तो; * सर्व दर्शन मिलकर एक जैन दर्शन बन जाता है। * परन्तु एवकार व स्यात्कारका प्रयोग विधि पूर्वक करना चाहिए (यथेच्छ नहीं)। ९. (ऐसा करें तो) सर्व एकान्तवादियोंके मत किसी न किसी नयमें गर्भित हो जायेंगे।

३. अनेकान्तका कारण व प्रयोजन—१. अनेकान्तके उपदेशका कारण (यही है कि) * शब्द अल्प हैं और अर्थ अनन्त। २. और उसके उपदेशका प्रयोजन है (विशाल दृष्टि, जिसके कारण) ३. अनेकान्तवादियोंको कुछ भी कहना अनिष्ट प्रतीत नहीं होता। ४. (इसीमें) अनेकान्तको प्रधानता व महत्ता है।

४. वस्तुमें विरोधी धर्मोंका निर्देश—१. वस्तु अनेक विरोधी धर्मोंसे गुम्फित है, यथा—२. उसमें भेद भी है और अभेद

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भी; ३. सद् भी है और असत् भी; ४. स्व भी है और पर भी; ५. विधि भी है और निषेध भी। ६–७. और इसी प्रकार अन्य अनेकों विरोधी धर्म तथा स्व व पर भाव भी उसमें है।

५. विरोधमें अविरोध—*उपरोक्त विरोधी धर्मोंमें कथंचित् विधि निषेध तथा भेद अभेद होनेके कारण, * अनेकान्तका स्वरूप भी कथंचित् विधि निषेधात्मक हो जाता है। १. इन विरोधी धर्मोंसे वस्तुमें कोई विरोध नहीं पड़ता, २. क्योंकि यथायोग्य किन्हीं धर्मोंमें अविरोध भी (वहाँ) रहता है; ३. जिसकी सिद्धि अपेक्षा भेदसे होती है; ४. यथा—एक अपेक्षासे वह एक रूप है तो अन्य अपेक्षासे अन्य रूप। ५. परस्पर विरोधी (धर्मों या) नयोंका विरोध मिटानेके लिए: ६. उनमें विधिवत् अपेक्षा लागू करनी चाहिए। यथा * नित्यत्व व अनित्यत्वमें, द्वैत व अद्वैतमें, भेद व अभेद में तथा एकत्व व पृथक्त्वमें विधि निषेध लागू करनेकी प्रसिद्ध विधि।

III. विषय वर्गीकरण विधि

चित्रों-द्वारा किया गया, विषयके भेद-प्रभेदोंका वर्गीकरण एक ही दृष्टिमें सरलतासे अवगत हो जाता है। यथा—नयके भेद-प्रभेदोंका वर्गीकरण—

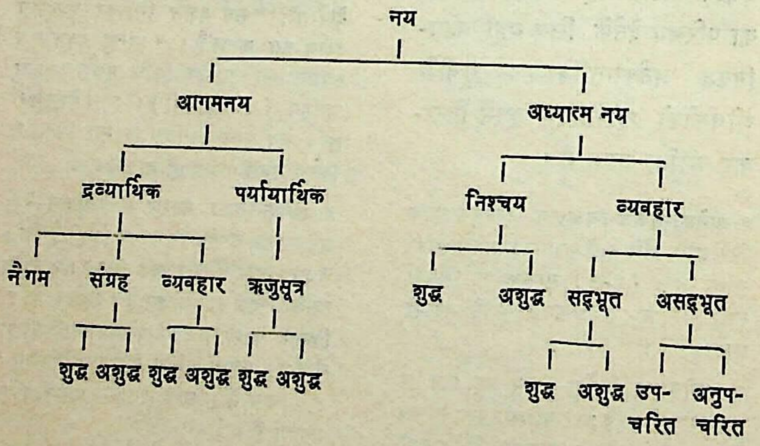

■ ■

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्राचीन पाण्डुलिपियों का सम्पादन

प्राचीन ग्रन्थों के सम्पादक का कार्य जितना महत्त्वपूर्ण है उतना ही कठिन भी। सम्पादन की जो पद्धति पहले मानी जाती थी वह अब काफ़ी पुरानी हो गयी है। क्यों कि सम्पादन का जो मुख्य उद्देश्य है, वह उस से पूर्णतया सिद्ध नहीं होता। सम्पादन का मुख्य उद्देश्य है शुद्ध रूप में मूल ग्रन्थ का प्रस्तुतीकरण तथा उसे अधिक से अधिक उपयोगी बनाना। इस प्रकार सम्पादन में पहला कार्य पाठ संशोधन का है।

पाठ निर्धारण और पाठान्तर

पहले यह पद्धति थी कि जितनी प्राचीन हस्तलिखित पाण्डुलिपियाँ सम्पादन के लिए उपलब्ध होती थीं उन में जो अधिक शुद्ध प्रति लगती थी, उसे आदर्श प्रति मान लिया जाता था तथा अन्य प्रतियों के पाठान्तर टिप्पण के रूप में दे दिये जाते थे। अब यह पद्धति समीचीन नहीं मानी जाती। जो प्रति अधिक शुद्ध प्रतीत होती है, कभी-कभी उस में भी लिपिकार की असावधानी से कई प्रकार की भूलें हो जाती हैं। इसी प्रकार कभी-कभी अशुद्धि-बहुल प्रति में भी बहुत से मूल शुद्ध पाठ सुरक्षित मिल जाते हैं। सम्पादन की विशेषता यही है कि सभी प्रतियों के पाठों में से मूल पाठ का निश्चय किया जाये। अन्य पाठान्तर टिप्पण के रूप में दे दिये जाते हैं। सभी महत्त्वपूर्ण पाठान्तर टिप्पण में देना नितान्त आवश्यक है। बहुत बार सम्पादक द्वारा निर्धारित मूल पाठ की अपेक्षा पाठान्तर में दिया गया पाठ अन्य विद्वानों की दृष्टि में अधिक संगत बैठता है। यही कारण है कि सभी पाठान्तर ध्यान पूर्वक संकलित किये जाते हैं। मैं ऐसे अनुभवी (?) सम्पादकों को भी जानता हूँ जो मात्र आदर्श प्रति के अशुद्ध लगने वाले पाठों के पाठान्तर ले कर, इस महान् कार्य की रस्म अदायगी करते हैं। इस से पाठक को

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यह भ्रम तो अवश्य होता है कि पाठ भेद लिये गये हैं किन्तु इस आधार पर यह निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता कि जिन प्रतियों के पाठान्तर दिये गये हैं उन में और पाठान्तर नहीं हैं। इस लिए अध्येता विद्वान् इस तरह के सम्पादित संस्करण पर पूरी तरह निर्भर नहीं कर सकता।

प्राचीन पाण्डुलिपियों के पाठ लेते समय पर्याप्त सावधानी की अपेक्षा रहती है। बहुत बार ऐसा होता है कि किसी एक ही प्रति पर से की गयी कई प्रतियाँ उपलब्ध हो जाती हैं। इन में प्रतिलिपि काल का भी अन्तर रहता है तथा लिपिकार की असावधानी या अतिरिक्त सावधानी (अपनी ओर से सुधार करने) के कारण उत्पन्न हुए पाठ भेद भी मिल जाते हैं। ऐसी स्थिति में सम्पादक का दायित्व और अधिक बढ़ जाता है कि सभी पाण्डुलिपियों की सावधानी पूर्वक परीक्षा करे। वास्तव में लेखक की मूल प्रति से की गयी प्रतिलिपियों के ही पाठान्तर लेना अभीष्ट रहता है। जब तक ऐसी पाण्डुलिपियाँ उपलब्ध नहीं होतीं, एक ही प्रकृति की कई पाण्डुलिपियों का उपयोग करने से विशेष लाभ नहीं है। पण्डित परम्परा के सम्पादक इस की उपयोगिता नहीं समझते।

विभाजन

मूल पाठ के निर्धारण के बाद ग्रन्थ की सामग्री को वर्गीकृत रूप में प्रस्तुत करने का काम भी आसान नहीं है। बहुत से ग्रन्थों में रचनाकार द्वारा किया हुआ वर्गीकरण प्राप्त हो जाता है। पद्य ग्रन्थ प्रायः सर्गों में बँटे होते हैं तथा गद्य ग्रन्थ अध्याय, आश्वास या उच्छ्‌वासों में। अपभ्रंश ग्रन्थ प्रायः सन्धियों में वर्गीकृत मिलते हैं। जहाँ इस प्रकार का वर्गीकरण प्राप्त हो जाता है, वहाँ सम्पादक का काम थोड़ा आसान हो जाता है। जहाँ किसी भी प्रकार का वर्गीकरण नहीं मिलता वहाँ सम्पादक का काम अधिक बढ़ जाता है। ऐसी स्थिति में ग्रन्थ की प्रकृति तथा विषय वस्तु के आधार पर ग्रन्थ को कई खण्डों और उपखण्डों में वर्गीकृत किया जाता है। सावधानी पूर्वक अनुशीलन करने पर यह वर्गीकरण सहज हो जाता है। पद्य ग्रन्थों में श्लोक, गाथा या कडवक आदि को विषय क्रम से विभाजित कर दिया जाता है। कठिनाई वहाँ अधिक होती है जहाँ बीच के किसी पाठ के त्रुटित होने से पद्य भी गद्य की तरह प्रतीत होता है। चम्पू ग्रन्थों में यह

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रायः हो जाता है। प्रकाशित ग्रन्थों में ऐसे प्रसंग उपलब्ध हैं जहाँ पद्य को गद्य मान लिया गया है।

गद्य ग्रन्थों में पैराग्राफ और जहाँ तक सम्भव हो सके वाक्यों के भी अंक दे कर वर्गीकरण करना चाहिए। मुद्रण काल के पूर्व यह परम्परा थी कि गद्य ग्रन्थ के परिमाण की अनुष्टुप् या अन्य किसी पद्य की तुलना में गणना कर ली जाती थी। इस प्रकार विशाल काय ग्रन्थों की पूर्ण शब्द संख्या तक का पता चल जाता है। यदि सम्पादक पूरी ईमानदारी के साथ अपने दायित्व का निर्वहन करे तो ग्रन्थ में एक शब्द की भी त्रुटि रहना मुश्किल है।

पाठ निर्धारण में एक बड़ी बात एक रूपता के निर्वाह की है। एक ही शब्द के अनेक रूप नहीं रखने चाहिए। किसी एक को ही स्वीकार करना चाहिए तथा पूरे ग्रन्थ में उस का निर्वाह करना चाहिए।

भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशनों के लिए सम्पादक मण्डल ने बहुत विचार-विमर्श के बाद संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश ग्रन्थों के सम्पादन के लिए निम्नलिखित आधार सूत्र निश्चित किये हैं।

१. सभी ग्रन्थ यथासम्भव कम से कम तीन स्वतन्त्र प्राचीन हस्तलिखित प्रतियों के आधार से तैयार किये जायेंगे। इस में भी प्रयत्न यह होना चाहिए कि अधिक से अधिक प्राचीन प्रतियों का उपयोग किया जाये। असाधारण परिस्थितियों में ही एकमात्र प्राचीन प्रति के आधार से प्रामाणिक संस्करण तैयार किया जा सकता है। महत्त्वपूर्ण पाठान्तर प्रतियों कें प्रतीकात्मक उल्लेखों सहित पाद-टिप्पणों में देना चाहिए। प्रतियों के पाठ से अतिरिक्त संशोधन कम से कम किये जायें; और यदि वे पाद-टिप्पणों में उपयुक्त नहीं ठहराये जा सकें तो उन्हें कोणाकार कोष्ठों में रखना चाहिए।

२. यदि ग्रन्थ पर संस्कृत टीकाएँ भी उपलभ्य हों तो उन्हें, या उन में से एक प्राचीनतम टीका को, मूल पाठ के साथ यथाविधि मूल पाठ से मेल बैठाते हुए देना चाहिए। यथासम्भव प्रत्येक पृष्ठ पर मूल और अनुवाद सम-प्रमाण रहे। यदि दो या अधिक टीकाएँ सम्मिलित करना हो तो उन्हें मूल से मेल बैठाते हुए परिशिष्ट में रखना चाहिए।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

३. प्रायः नियमतः ही मूल ग्रन्थ का हिन्दी अनुवाद दिया जाना चाहिए, जिस में यथा स्थान प्राचीन टीकाओं के आधार से भी स्पष्टीकरण किया जा सकता हैं। विशेष अर्थ लिखे जा सकते हैं। अनुवाद, या तो उसी पृष्ठ पर नीचे, अथवा सामने के पृष्ठ पर रखा जाना चाहिए। केवल विशेष परिस्थिति में ही अनुवाद, या तो मूल पाठ पूरा होने के पश्चात् परिशिष्ट में, या अन्त में रखा जा सकता है।

४. प्रत्येक संस्करण में एक प्रस्तावना रहेगी। उस के नाना विषयों में निम्नलिखित विषयों का विवेचन होगा :

(क) उपयोग में ली गयी प्राचीन प्रतियों का पूर्ण आलोचनात्मक विवरण, जिस में उन के परस्पर सम्बन्ध का, यदि हो सके तो एक वंशानुक्रम तालिका सहित स्पष्टीकरण किया जाये।

(ख) उन पाठ संशोधन के नियमों का निर्देश, जिन के आधार से प्रतियों के पाठ स्वीकृत या अस्वीकृत किये गये हों।

(ग) ग्रन्थ के स्वरूप व विषय आदि को ध्यान में रख कर निम्नलिखित विषयों का भी समावेश करना उचित होगा।

(१) ग्रन्थकार का जीवन चरित्र व रचना काल।

(२) ग्रन्थकार पर पूर्ववर्ती ग्रन्थकर्ताओं का प्रभाव, तथा तद्विषयक साहित्य में ग्रन्थ का स्थान।

(३) सम्पादित ग्रन्थ के विषय का सुव्यवस्थित सारांश।

(४) ग्रन्थ के अध्ययन से उत्पन्न हुए पौराणिक, ऐतिहासिक, भौगोलिक दार्शनिक आदि प्रश्नों का विवेचन।

(५) ग्रन्थ की भाषा, छन्द, शैली, लेखन-पद्धति, प्रतिपादन प्रणाली आदि विषयों की समीक्षा।

(६) ग्रन्थ के काव्यत्व व कलात्मक गुणों का यथा-आवश्यक मूल्यांकन।

(७) ग्रन्थ के विषय आदि का भारतीय साहित्य के, तथा ज्ञान की परम्परा के एक अंग के रूप में सर्वेक्षण।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्य जो भी विवेचनीय विषय प्रस्तावना में समावेश के योग्य न समझा जाये, उसे एक परिशिष्ट के रूप में लिया जा सकता है।

५. ग्रन्थ के विषयानुसार, उपयोग की दृष्टि से, विविध अनुक्रमणिकाएँ जोड़ना भी आवश्यक है। जहाँ तक सम्भव हो सन्दर्भसूचक अंक पृष्ठों व पंक्तियों के नहीं, किन्तु अध्यायों, परिच्छेदों व पद्यों के देना चाहिए। निम्नलिखित विषयों की अनुक्रमणिकाएँ देना उचित है :

(क) मूल ग्रन्थ के पद्यों व सूत्रों की।

(ख) मूल व टीका में आये अवतरणों की।

(ग) मूल व टीका में उल्लिखित ग्रन्थकारों व ग्रन्थों की।

(घ) वैयक्तिक नामों की, उन के संक्षिप्त परिचय-सहित।

(ङ) पारिभाषिक व मतमतान्तर-सम्बन्धी विशिष्ट शब्दों की।

(च) विषय-सम्बन्धी प्रकरणों की।

ये सब अनुक्रमणिकाएँ वर्णानुक्रम से तैयार करनी चाहिए।

सम्पादक को एक प्राक्कथन में वैयक्तिक विषय-सम्बन्धी बातों का संक्षेप विवरण देना चाहिए। ग्रन्थमाला सम्पादक अपना पृथक् वक्तव्य लिखेंगे।

सम्पादन व अनुवाद के लिए स्वीकृत ग्रन्थ की विशेष आवश्यकतानुसार सम्पादक ग्रन्थमाला-सम्पादकों के सम्मुख उपर्युक्त योजनाओं में उचित हेरफेर प्रस्तुत कर सकता है।

संस्कृत, प्राकृत अपभ्रंश ग्रन्थों के पाठ को प्रतिष्ठित आदर्शानुसार व्यवस्थित रूप से प्रस्तुत करना वांछनीय है।

६. संस्कृत पाठ के लिए वर्णविन्यास में एक-रूपता का निर्वाह करना चाहिए। जहाँ विकल्प सम्भव है वहाँ एक नियम का ही लगातार पालन करना उचित है। इस सम्बन्ध में निम्नलिखित बातों को ध्यान में रखना चाहिए।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(१) समास-रहित शब्द के मध्य में तथा शब्द के अन्त में दन्त्य **न्** के स्थान पर पञ्चमाक्षर न रख कर अनुस्वार का प्रयोग करना उचित न होगा। उदाहरणार्थ—**अङ्क** लिखना चाहिए, न कि **अंक**। उसी प्रकार **अंजन** नहीं, किन्तु **अञ्जन**; **दंड** नहीं, किन्तु **दण्ड**; **अनंत** नहीं, किन्तु **अनन्त**, **कंपन** नहीं, किन्तु **कम्पन** लिखना चाहिए। उसी प्रकार **गच्छन् हसति** लिखना चाहिए, न कि **गच्छं हसति**। तथापि **किंतु, किंचित्** आदि रूप लिखना उचित है।

(२) वाक्य या पद्य के अन्त में, जब तत्पश्चात् दूसरा शब्द न हो या कोई स्वर हो, तब, अन्त्य **म्** के स्थान पर अनुस्वार का आदेश मान्य न होगा।

(३) जब किसी उपसर्ग या पद के अन्त में **म्** आवे, तब उसे आगे आनेवाले व्यञ्जन के पञ्चमाक्षर में परिवर्तित करना मान्य न होगा। किन्तु उसे अनुस्वार लिखना उचित है। जैसे **संपद्, संगच्छते**, लिखना चाहिए, न कि **सम्पद्, सङ्गच्छते**। **त्वं करोषि** लिखना उचित है न कि **त्वङ्करोषि**।

(४) जब **ब** और **व**, **श** और **स**, का प्रयोग वैकल्पिक रूप से पाया जाये तब भण्डारकर ओ० रि० इंस्टीटियूट पूना–४ से प्रकाशित महाभारत के आलोचनात्मक संस्करण में प्रयुक्त नियमानुसार वर्ण को स्वीकार करना चाहिए।

(५) सवर्ण सन्धि में **अ** या **आ** के लोप की सूचना के लिए एक या दो अवग्रह चिह्नों (ऽ,ऽऽ) का प्रयोग नहीं करना चाहिए। परन्तु **ए** या **ओ** के पश्चात् **अ** के लोप की सूचना के लिए इस का प्रयोग करना चाहिए। जैसे **विद्याधिवास** लिखिए, **विद्याऽधिवास** नहीं। **संगच्छतेऽधुना, आगतोऽनन्तः** लिखिए, **संगच्छतेधुना, आगतोनन्तः** नहीं।

(६) यूरोपीय अन्तर्विराम चिह्नों, जैसे प्रश्नवाचक (?) आश्चर्यवाचक (!) आदि का प्रयोग उचित नहीं है। गद्य वाक्य के अन्त में दण्ड (।) का

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रयोग चाहिए। किन्तु लम्बे वाक्यों में जहाँ कुछ विराम की आवश्यकता पड़े वहाँ अर्द्धदण्ड के समकक्ष अल्पविराम चिह्न (,) का प्रयोग किया जा सकता है। टीका में अर्थपूरक छोटी-छोटी इकाइयों को दण्ड या अल्पविराम से पृथक् किया जा सकता है। परिच्छेद के अन्त में किसी प्रकार की समाप्ति की सूचना के लिए युगल दण्डों का प्रयोग किया जा सकता है। छन्दात्मक पंक्तियों के अन्त में एक या दो दण्डों का प्रयोग किया जा सकता है। परन्तु चरण के मध्य में किन्हीं दूसरे चिह्नों जैसे अल्पविराम आदि का प्रयोग नहीं किया जाना चाहिए।

(७) किसी वाक्य या पद्य के शब्दों को वहीं तक ही एक रेखा के नीचे लिखना चाहिए, जहाँ तक कि वैसा लिखना सन्धि-नियमों के अनुसार अनिवार्य हो। **श्रीपतिर्भगवान्पुष्याद्भक्तानां वः समीहितम्।** अथवा, **भगवान् पु०** इस रूप में भी।

(८) गद्य में किसी वास्तविक उद्धरण या किसी दूसरे के कथन को ग्रन्थ के शेष पाठ से पृथक् प्रारम्भ में एक रेखा जैसे (–) के द्वारा तथा, अन्त में इति शब्द के द्वारा दिखला देना चाहिए, और उसे सन्धि के असाधारण नियमों के अनुसार उद्धरण के अन्तिम शब्द के साथ नहीं जोड़ना चाहिए अथवा उद्धरण को विरामों के बीच रखा जा सकता है।

(९) टीका के गद्य में, व्याख्या को अधिक स्पष्ट करने की दृष्टि से, यदि आवश्यकता समझी जाये तो सन्धि के नियमों में शिथिलता की जा सकती है।

(१०) टीका के प्रारम्भ में निर्दिष्ट प्रतीक को काले टाइप में दिखलाना चाहिए और उस के आगे साधारण टाइप में इति लिखना चाहिए, जिसे सन्धि से नहीं जोड़ना चाहिए।

(११ अ) संस्कृत को रोमन लिपि में रखने के लिए निम्न पद्धति अपनायी जाये—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

a	ā	i	ī	u	ū	ṛ	ṝ	lṛ
अ	आ	इ	ई	उ	ऊ	ऋ	ॠ	लृ
e	ai	o	au	aṃ	aḥ,			
ए	ऐ	ओ	औ	अं	अः			
k	kh	g	gh	ṅ				
क्	ख्	ग्	घ्	ङ्				
c	ch	j	jh	ñ				
च्	छ्	ज्	झ्	ञ्				
ṭ	ṭh	ḍ	ḍh	ṇ				
ट्	ठ्	ड्	ढ्	ण्				
t	th	d	dh	n				
त्	थ्	द्	ध्	न्				
p	ph	b	bh	m				
प्	फ्	ब्	भ्	म्				
y	r	l	v					
य्	र्	ल्	व्					
ś	ṣ	s	h	ḷ	kṣ	jñ		
श्	ष्	स्	ह्	ळ्	क्ष्	ज्ञ्		

(ब) प्राकृत व अपभ्रंश में निम्न लिपि परिवर्तन का प्रयोग किया जा सकता है।

ĕ	aï	ŏ	aü
ऍ	अइ	ऑ	अउ

(१२) किसी संयुक्त व्यंजन में जब **र** पहला वर्ण हो, तब उस के साथ के दूसरे व्यंजन का द्वित्व नहीं करना चाहिए। जब तक कि उस के लिए कोई व्युत्पत्तिपरक आधार न हो (जैसे कार्त्तिकेय आदि); **वर्ग** व **कीर्ति** लिखिए, **वर्ग्ग** व **कीर्त्ति** नहीं।

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri
Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

७. प्राकृत व अपभ्रंश ग्रन्थों के लिए लिपि-सम्बन्धी निम्नलिखित नियमों का पालन किया जाये।

(१) नियमतः सर्वत्र अनुस्वार का ही प्रयोग किया जाये परसवर्ण का नहीं। उदाहरणार्थ **बंक, अंजण, कंड, वंत** और **बिंब** लिखा जाना चाहिए। किन्तु **वन्क, अञ्जण, कण्ड, वन्त** और **बिन्ब** नहीं। संयुक्त व्यंजन, **ण्ण, न्न,** और **म्म** प्राकृत में मिलते हैं, अतः **कण्ण,** (अन्न), **धम्म, तम्मि,** लिखना चाहिए, **कंण, अंन, धंम, तंमि** नहीं। प्राकृत में स्वर-रहित व्यंजन का प्रयोग नहीं होता, अतः **धम्मं** लिखिए, **धम्मम्** नहीं।

(२) जैन शौरसेनी तथा अपभ्रंश ग्रन्थों में सर्वत्र प्रारम्भ में व मध्य में तथा अकेले और संयुक्त रूप में भी **ण** का भी प्रयोग किया जाना चाहिए, जब तक कि ऐसा न करने का कोई विशेष भाषात्मक आधार न हो, और ऐसो परिस्थति होने पर प्रधान सम्पादकों से परामर्श करना चाहिए।

(३) यदि हस्तलिखित पाण्डुलिपियों में **इ** व **ए** तथा **उ** व **ओ** के प्रयोग में अनिश्चय पाया जाये तो इस का स्पष्ट कारण है कि देवनागरी में ह्रस्व **ए** तथा **ओ** के कोई चिह्न नहीं हैं। अतः इन के लिए इन प्रतीकों का उपयोग किया जा सकता है। ह्रस्व **ए** के लिए— **ए़** (ॆ) ह्रस्व **ओ** के लिए – **ओ** (ॊ) इन्हीं अक्षरों का प्रयोग अपभ्रंश में भी ह्रस्व **ए** और ह्रस्व **ओ** के लिए किया जा सकता है। छन्द की दृष्टि से लघुमात्रा के सूचनार्थ अर्धचन्द्र चिह्न का भी उपयोग किया जा सकता है। **(देवें)**।

(४) संयुक्त व्यंजनों को इस प्रकार लिखना चाहिए—**पक्ख, पख्ख** नहीं, **वग्घ वघ्घ,** नहीं, **कच्छ, कछ्छ** नहीं, **वज्झ, वझ्झ** नहीं, **दुट्ठ, दुठ्ठ** नहीं, **वड्ढ, वढ्ढ** नहीं, **अत्थ, अथ्थ** नहीं, **बद्ध, बध्ध** नहीं, **गब्भ, गभ्भ** नहीं **मज्झण्ह, मझ्झह्ण** नहीं **बम्ह, बह्म** नहीं।

(५) शब्द के बीच उद्वृत स्वर **अ** और **आ** के साथ **य** श्रुति का प्रयोग पूर्ववर्ती स्वर का विचार न कर के करना चाहिए। कहीं-कहीं संस्कृत का **य** भी रह सकता है जैसे **पयोयण** में। **च** के स्थान पर **य** का प्रयोग केवल स्वर के पश्चात् ही होता है, किन्तु अनुस्वार के पश्चात् **च** जैसा का तैसा सुरक्षित रहता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(६) हस्तलिखित पाण्डुलिपियों में अनुस्वार और अनुनासिक दोनों के लिए केवल एक ही चिह्न (ं) का प्रयोग हुआ है। अतः अपभ्रंश ग्रन्थों का सम्पादन करते समय छन्द की आवश्यकतानुसार अनुनासिक के लिए चन्द्रबिन्दु (ँ) का प्रयोग करना चाहिए।

(७) संस्कृत शब्द **खलु** के प्राकृत में तीन रूप मिलते हैं: **खु, क्खु,** और **हु**। अनुस्वार के पश्चात् केवल **खु** का ही प्रयोग करना चाहिए, किन्तु स्वर के पश्चात् **हु** और **क्खु** दोनों का प्रयोग हो सकता है। **क्खु** के पूर्व का स्वर ह्रस्व होता है।

(८) संस्कृत **अपि** के प्राकृत में कई रूप मिलते हैं, जैसे **पि, मि, वि, अवि.** **पि** और **मि** के पूर्व निश्चयतः अनुस्वार होता है, जैसे **खणं पि, खणं मि,** किन्तु **तह वि, किम्मवि, अवि** (किसी पंक्ति या वाक्य के प्रारम्भ में) **णाम; किं वि** का प्रयोग उचित नहीं है, यद्यपि हस्तलिखित प्रतियों में अनेक प्रयोग मिलते हैं।

(९) संस्कृत **इव** के प्राकृत में अनेक पर्याय मिलते हैं: **पिव, मिव, इव, विव, व, व्व**। इन में से **पिव** और **मिव** (कुछ स्थानों में) अनुस्वार के पश्चात् प्रयुक्त होते हैं, किन्तु **विव** नहीं। **व्व** अपने से पूर्व एक ह्रस्व स्वर की अपेक्षा रखता है।

(१०) संस्कृत इति के कई पर्याय हैं। जैसे—**इय, इ, इदि, ति, त्ति, इत्ति**। इन में से **ति** का प्रयोग अनुस्वार के पश्चात् होता है, और **इ** का स्वर के पश्चात्। **त्ति** के पूर्व ह्रस्व स्वर अपेक्षित है, **इत्ति** का प्रयोग कभी-कभी सन्धि में भी होता है, जैसे तहेत्ति और **इय** तथा **इइ** का प्रयोग किसी छन्दात्मक चरण अथवा किसी वाक्य के प्रारम्भ में। एवं **इदि** का प्रयोग **किमिदि**-जैसे रूपों में।

(११) प्राकृतों में साधारणतः किसी शब्द के प्रारम्भ में अथवा अनुस्वार के पश्चात् संयुक्त व्यंजन का प्रयोग नहीं होता। अतः वाक्य के प्रारम्भ में **एव** अच्छा होगा। **य्येव** नहीं। किन्तु **सो य्येव, सोच्चिय** का प्रयोग हो सकता है। अनुस्वार के पश्चात् **तं चेव, तं च्चेव** नहीं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(१२) **पि, ति, क्खु, व्व,** आदि अव्ययों के पूर्व के शब्द से अन्तर दे कर पृथक् कर देना चाहिए, उस के साथ जोड़ना नहीं चाहिए।

८. १—तथाकथित संस्कृत नाटक जिन में कई प्रकार की प्राकृतों का प्रयोग हुआ है, २—अर्धमागधी आगम के ग्रन्थों, ३—आगमोत्तर कालीन ग्रन्थों व उन की टीकाओं, ४—भिन्न-भिन्न प्रदेशों से प्राप्त प्राकृत रचनाओं, जो वररुचि अथवा पुरुषोत्तम, मार्कण्डेय आदि कृत व्याकरणों का अनुसरण करती हैं, ६—हेमचन्द्र के पूर्व व पश्चात् कालीन साहित्यिक प्राकृत रचनाओं और, ७—पूर्व तथा पश्चिम भारत से उपलब्ध अपभ्रंश ग्रन्थों का सम्पादन करते समय विशेष प्रकार की समस्याएँ और कठिनाइयाँ उपस्थित हो सकती हैं, अतः सम्पादकों से ऐसे प्रसंगों पर प्रधान सम्पादकों से परामर्श करने का अनुरोध है।

९. सम्पादकों को अपनी मुद्रणार्थ प्रति की पंक्तियों को दुगुने अन्तर से लिखना चाहिए व पार्श्व में अवकाश भी पर्याप्त छोड़ना चाहिए। यह अच्छा होगा कि पाद-टिप्पण चौड़े पार्श्वावकाश पर प्रसंग के सन्दर्भ के समानान्तर १, २, ३, आदि अंकों के साथ लिखे जायें और इन्हीं अंकों को मूल पाठ में भी दिया जाये।

१०. यह आवश्यक है कि ग्रन्थ के सम्पादक किसी सुविधाजनक वैज्ञानिक उल्लेख प्रणाली का प्रयोग करें और इस हेतु ग्रन्थ के स्वाभाविक विभाजनों जैसे अध्याय, खंड, अंक, पद्य आदि। किन्तु गद्य में उस के स्वरूपानुसार पैराग्राफ़ और आवश्यक हो तो पंक्ति का उल्लेख किया जाये। अनुक्रमणिकाओं आदि में केवल पृष्ठ मात्र का उल्लेख जहाँ तक सम्भव हो नहीं करना चाहिए। गद्य रचनाओं का विषय-विभाग की सुविधा सुन्दर छपाई इन दोनों दृष्टियों से पैराग्राफ़ों में विभाजन करना चाहिए। यह अच्छा होगा कि प्रत्येक पृष्ठ के सम्पूर्ण पृष्ठ की पंक्तियों के पार्श्व अवकाश में दोनों ओर तीन-तीन या पाँच-पाँच के अन्तर से पंक्तियों के गणनांक दे दिये जायें।

११, ये सम्पादकों के मार्गदर्शन हेतु केवल व्यावहारिक संकेत-भर हैं और इन का उद्देश्य सम्पादक को अपनी हस्तलिखित प्रतियों को परम्परा के सावधानीपूर्वक अध्ययन के उपरान्त निकाले गये परिणामों से विचलित करना नहीं है।

■ ■

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भगवान् महावीर का २५०० वाँ निर्वाण महोत्सव : आयोजनाएँ

भगवान् महावीर का निर्वाण हुए २५०० वर्ष होने को हैं। सम्पूर्ण भारत वर्ष में पच्चीस सौवाँ निर्वाण महोत्सव विशेष समारोह के साथ मनाने की आयोजनाएँ बनायी जा रही हैं। अभी तक जो आयोजनाएँ संक्षेप या विस्तार से प्रकाश में आयी हैं वे इस प्रकार हैं—

भारत जैन महामण्डल, बम्बई

भारत जैन महामण्डल ने इस निर्वाण महोत्सव के अवसर पर भगवान् महावीर तथा जैन धर्म के विषय में उच्चकोटि की प्रामाणिक जानकारी देने वाले साहित्य प्रकाशन की योजना बनायी है।

जैन समाज के वरिष्ठ विद्वानों के विचार विमर्श के बाद योजना को अन्तिम रूप दिया गया है। साहित्य के सम्पादक का गुरुभार लब्ध प्रतिष्ठ विद्वान् डॉ० आदिनाथ नेमिनाथ उपाध्ये ने स्वीकार किया है तथा योजना को अन्तिम रूप इस प्रकार दिया है :

भारत जैन महामण्डल भगवान् महावीर के २५००वें निर्वाण महोत्सव पर तीन प्रकार का साहित्य प्रकाशित करेगा।

१. **जैनिज़्म : लास्ट थ्री थाउजेण्ड इअरस् आर मोर**—यह ग्रन्थ डबल क्राउन साइज़ के पाँच-पाँच सौ पृष्ठों के दो भागों में प्रकाशित होगा। इस में अधिकारी विद्वानों द्वारा जैन धर्म के प्रामाणिक इतिहास तथा जैन धर्म, दर्शन, संस्कृति और समाज आदि विषयों पर लिखित महत्त्वपूर्ण सामग्री रहेगी। पुस्तक की जो विस्तृत रूपरेखा प्रकाशित की गयी है, उस से इस के महत्त्व का स्पष्ट आभास मिलता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

२. लार्ड महावीर एण्ड हिज़ टीचिंग—इस में भगवान् महावीर के जीवन तथा उपदेशों से सम्बन्धित महत्त्वपूर्ण सामग्री होगी। किसी भी भाषा में लेखक अपनी रुचि के अनुसार लिख सकता है, किन्तु किसी भी भारतीय भाषा में लिखित लेख आदि का संक्षिप्त सार अँगरेज़ी में तथा भारतेतर भाषा में लिखित लेखादि का सार हिन्दी में दिया जायेगा।

३. तीसरे प्रकार के प्रकाशनों में मोनोग्राफ़, परिपत्र आदि होंगे। विभिन्न संस्थाएँ अपनी हैसियत के अनुसार यह कार्य स्वतन्त्र रूप में भी सम्पन्न कर सकती हैं। मण्डल का सम्पादन विभाग इस के लिए अनुरोध करने पर समुचित मार्गदर्शन दे सकता है।

यह साहित्य अँगरेज़ी तथा हिन्दी दोनों भाषाओं में प्रकाशित होगा।

इस विषय में और विस्तृत जानकारी महोत्सव समिति के मन्त्री श्री रिषभदास रांका ५०५ कालबादेवी रोड, बम्बई–२ से प्राप्त की जा सकती है।

भा० दि० जैन विद्वत्-परिषद्

भारतवर्षीय दिगम्बर जैन विद्वत्-परिषद् ने अपने सागर (म० प्र०) अधिवेशन में एक प्रस्ताव पास कर के महावीर निर्वाण महोत्सव पर साहित्य प्रकाशित करने की घोषणा की है।

अभी विस्तृत योजना प्रकाशित नहीं हुई है। विशेष जानकारी परिषद् के अध्यक्ष डॉ० नेमिचन्द्र शास्त्री, भोला भवन, १ महाजन टोली, आरा बिहार से प्राप्त की जा सकती है।

श्री जैन श्वे० तेरापन्थी महासभा

आचार्य तुलसी जी ने जैनागमों के विशिष्ट सम्पादन की जो योजना बनायी है, उसे पूर्णता देने का प्रयत्न इस गति से चल रहा है कि भगवान् महावीर के पच्चीस सौवें निर्वाण दिवस तक सभी आगम ग्रन्थ प्रकाश में आ जायें। आगम

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ग्रन्थों के प्रकाशन की योजना इसी पत्रिका में अन्यत्र प्रकाशित है। इस विषय में और अधिक जानकारी श्री श्रीचन्द्र रामपुरिया, पोर्चुगीज चर्च स्ट्रीट कलकत्ता से प्राप्त की जा सकती हैं।

श्राविका संस्था सोलापुर

बाल ब्रह्मचारिणी श्री पण्डिता सुमतिबाई शहा ने महावीर निर्वाण महोत्सव पर मराठी में एक विस्तृत स्मृति ग्रन्थ प्रकाशित करने की योजना बनायी है। इस विषय में डॉ० उपाध्ये का निर्देशन प्राप्त है। विशेष जानकारी पण्डिता सुमतिबाई शहा श्राविका संस्था नगर, सोलापुर से प्राप्त की जा सकती है।

भारतीय ज्ञानपीठ

भारतीय ज्ञानपीठ के संस्थापक श्रीमान् साहू शान्ति प्रसाद जैन का विचार है कि भगवान् महावीर के २५००वें निर्वाण दिवस पर भारतीय ज्ञानपीठ जैन धर्म और संस्कृति के इतिहास पर प्रकाश डालने वाली पुरातात्त्विक सामग्री का सचित्र प्रकाशन करे। इस विषय में विस्तृत योजना तैयार हो रही है। श्री नीरज जैन सतना ने इस विषय में प्रारम्भिक कार्य भी किया है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सेमिनार-सम्मेलन

जैन दर्शन और संस्कृति परिषद्

इस परिषद् की स्थापना आचार्य तुलसी की प्रेरणा से श्री जैन श्वेताम्बर तेरापन्थी महासभा के तत्त्वावधान में की गयी है। अपने स्थापना काल से अब तक इस के तीन अधिवेशन हो चुके हैं—पहला बीकानेर में, दूसरा बीदासर में तथा तीसरा बम्बई में। तीनों अधिवेशन आचार्यश्री के सान्निध्य में सम्पन्न हुए तथा बाहरी विद्वानों के अतिरिक्त आचार्यश्री के विद्वान् शिष्य साधुओं और विदुषी साध्वियों ने भी अधिवेशनों में निबन्ध पाठ किये।

प्रथम अधिवेशन

पहला अधिवेशन २५ से २७ अक्तूबर तक १९६४ में बीकानेर में सम्पन्न हुआ। इस के संयोजक थे श्री गोपीचन्द चोपड़ा तथा स्वागतकर्ता थे श्री मोहन लाल बाठिया। इस अधिवेशन में जैन दर्शन और संस्कृति से सम्बन्धित सब अठारह निबन्ध पढ़े गये :

१. अपभ्रंश-कथाकाव्य—डॉ० देवेन्द्रकुमार शास्त्री, २. संस्कृति के भूत—डॉ० इन्द्रचन्द्र शास्त्री, ३. श्रमण संस्कृति का हार्द—लक्ष्मी नारायण भारतीय, एम० ए० ४. श्रमण संस्कृति पर एक तुलनात्मक अध्ययन—मुनि श्री दुलीचन्द, ५. जीवन की आवश्यकताएँ पूरी करने वाले वृक्ष—साध्वी श्री कनक प्रभा, ६. उपनिषदों पर श्रमण संस्कृति का सुप्रभाव—मुनि श्री नथमल, ७. व्युत्सर्ग—जैन साधन का केन्द्र-बिन्दु—डॉ० इन्द्रचन्द्र शास्त्री, ८. तिरुकुरल (तमिल वेद) एक जैन रचना—मुनि श्री नगराज, ९. क्या व्रात्य श्रमण थे ?—मुनि श्री रूपचन्द्र, १०. ध्वनि-विज्ञान—साध्वी श्री संघमित्रा, ११. भ. महावीर कालीन धार्मिक परम्पराएँ—साध्वी श्री यशोधरा, १२. जैन दर्शन और पाश्चात्य दर्शन का तुलनात्मक अध्ययन—साध्वी श्री मंजुला, १३. प्रश्नव्याकरण सूत्र—एक अध्ययन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

—श्री अगर चन्द नाहटा, १४. बौद्ध साहित्य में भगवान् महावीर—साध्वी श्री कनकश्री, १५. जैन और बौद्ध—डॉ० ज्योति प्रसाद जैन, १६. आर्यों का एकीकरण—श्री रामचन्द्र जी जैन० एडवोकेट, १७. नव्य श्रमण विचारधारा—श्री के० सी० जैन, १८. प्राकृत साहित्य—डॉ० सतरंजन वनर्जी,

अधिवेशन की कार्यवाही पुस्तक रूप में प्रकाशित हो चुकी है तथा उस में ये सभी निवन्ध संगृहीत हैं।

द्वितीय अधिवेशन

परिषद् का द्वितीय अधिवेशन वीदासर (राज०) में २० से २६ से अक्तूबर तक १९६६ में सम्पन्न हुआ। इस में सव सत्ताइस निबन्ध पढ़े गये : १. रामचन्द्र गुणभद्र नामक जैनाचार्यों की काव्य-शास्त्र को देन : डॉ० सत्यदेव चौधरी, २. जैन धर्म की प्राचीनता एवं सार्वभौमिकता : डॉ० देवेन्द्रकुमार शास्त्री, ३. महापरिज्ञा अध्ययन और उसका विच्छेद : श्री परमेष्ठीदास जैन, ४. भारतीय संस्कृति में श्रमण-संस्कृति का योगदान : डॉ० रवीन्द्रकुमार जैन, ५. जैन जीवत्व तथा आधुनिक प्राणी-विज्ञान : प्रो० कस्तूरचन्द ललवानी, ६. आदिकालीन हिन्दी जैन साहित्य की दो वेजोड़ गद्य-काव्य कृतियाँ : डॉ० हरीश, ७. जैन दर्शन और विज्ञान की दृष्टि में पदार्थ क्या है : प्रो० महावीर राज गेलडा, ८. आस्तिकवाद और नास्तिक वाद : श्री प्रेमसुमन जैन, ९. वृहत्तर भारत के दक्षिणार्ध और उत्तरार्ध की विभाजक रेखा-वेयड्ढ पर्वत : मुनि श्री नथमल जी, १०. आगम शोधकार्य : कुछ समस्याएँ : मुनि श्री दुलहराज जी, ११. आगमों के कतिपय विमर्शणीय शब्द : मुनि श्री श्रीचन्द्र जी, १२. औपपातिक सूत्र का काल-निर्णय : साध्वी श्री संघमित्रा जी, १३. क्या जैन तप-साधना शुष्क देह-दमन है ? : साध्वी श्री यशोधरा जी, १४. भारतीय विचारधारा में देववाद : साध्वी श्री कानुकुमारी जी, १५. आगम व आगमेतर साहित्य में समुद्र-यात्रा : साध्वी जयश्री जी, १६. पक्षी-जगत् और आगम-कालीन पक्षी : साध्वी श्री कनकप्रभा जो १७. कवि बनारसीदास की भक्ति-साधना : डॉ० प्रेमसागर जैन, १८. वुड्ढसावय (वृद्ध श्रावक) : एक अनुचिन्तन : साध्वी श्री कनकश्री जी, १९. श्रमण-परम्परा वादी आर्येतर जातियाँ : साध्वी श्री मंजुला जी, २०. जैन-साहित्य में द्वारका :

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मुनि श्री रूपचन्द जी, २१. आगम-पाठ संशोधन-कार्य : श्री कस्तूरमल बांठिया, २२. जैन धर्म और नारी : लक्ष्मीनारायण भारतीय, २३. ऋषभदेव और शिव की एकत्व सिद्धि : साध्वी श्री मंजुला जी, २४. भारतीय विचारधारा में जैन मनीषियों का योगदान : श्री युगलसिंह खीची, 25. Poetry of Uttaradhyayana Sutra : Shri Ram Prakash Poddar, 26. System of Chronology in the Prabandhacintamani : Shri V. N. Bharadwaj. 27. Dr. Jacobi and Vasi Candana Kalpa : Muni Shri Mahendrakumar Dviteeya.

इस अधिवेशन के संयोजक थे श्री श्रीचन्द्र रामपुरिया। इस अधिवेशन की भी कार्यवाही तथा निबन्ध पुस्तक रूप में प्रकाशित हो चुके हैं।

तृतीय अधिवेशन

परिषद् का तीसरा अधिवेशन बम्बई में सम्पन्न हुआ। इस अधिवेशन में भी समागत विद्वानों तथा साधु साध्वियों ने महत्त्वपूर्ण निबन्ध पढ़े।

जैन दर्शन और संस्कृति परिषद्ने विद्वानों को तो कार्य करने की प्रेरणा दी ही साधु-साध्वियों को भी शोध-अनुशीलन की ओर उन्मुख किया। एक बड़ी बात यह कि समाज ने भी अध्ययन-अनुसन्धान के महत्त्व को समझा तथा उस में रुचि ली।

भारतीय जैन साहित्यकार संसद

संसद की स्थापना के अवसर पर त्रिसूत्रीय उद्देश्यों तथा कार्यक्रम की घोषणा इस प्रकार की गयी थी :

१. नवीन जैन साहित्य के निर्माण में सहयोग देना, नये लेखकों को सम्भव सहायता द्वारा प्रोत्साहित करना, उन्हें परामर्श देना, उन की रचनाओं को संशोधित और परिमार्जित करना एवं कथा, काव्य, दर्शन प्रभृति विभिन्न अंगों पर रचनाएँ प्रस्तुत कराने की चेष्टा करना।

२. जैन साहित्य के विभिन्न अंगों पर शोधकार्य करने के हेतु शोधकर्त्ताओं को विषय निर्वाचन में सहायता पहुँचाना, शोधकार्य प्रस्तुत कराने वाले संस्थानों से सम्पर्क स्थापित कर उन्हें विषय और सामग्री द्वारा सम्भव सहायता पहुँचाना एवं शोध कराने वाले निर्देशक विद्वानों से सम्बन्ध स्थापित कर शोध-विषयक रूपरेखा का परामर्श करना।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

३. जैन साहित्य पर रचित मौलिक रचनाओं के प्रकाशन की व्यवस्था करना, विभिन्न विद्वानों द्वारा प्रस्तुत जैन साहित्य विषयक शोध प्रबन्धों का निरीक्षण कर प्रकाशन व्यवस्था करना एवं उपयोगी और महत्त्वपूर्ण प्राचीन जैन रचनाओं के संशोधन, सम्पादन आदि की व्यवस्था कर प्रकाशन का प्रबन्ध करना।

जिस उद्देश्य और उत्साह के साथ संसद् की स्थापना हुई, तदनुरूप ही इस का प्रथम अधिवेशन आरा (बिहार) में ९ जनवरी, १९६५ में विशेष समारोह के साथ सम्पन्न हुआ। इस अधिनेशन में विभिन्न विभागों के अन्तर्गत सब सोलह निबन्ध पढ़े गये।

अधिवेशन का प्रतिवेदन क्रमांक १ प्रकाशित हो चुका है जिस में अधिवेशन की कार्यवाही तथा पढ़े गये निबन्ध संगृहीत हैं।

दूसरा अधिवेशन राजगृह (बिहार) में आयोजित था।

संसद् को भारत सरकार के समिति अधिनियम के अन्तर्गत पंजीकृत कराया गया था, किन्तु इस के बाद परिषद् के संस्थापक सदस्यों ने इसे अखिल भारतीय दि० जैन विद्वत्-परिषद् के साथ सम्बद्ध कर दिया है।

प्राकृत सेमिनार

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के सहयोग से शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर में २२ से २५ मई तक 'प्राकृत सेमिनार' का आयोजन किया गया था। पिछले लगभग सौ वर्षों में पहली बार इस प्रकार के सेमिनार का आयोजन हुआ। इस में भारतवर्ष के विभिन्न अंचलों से लगभग चालीस विशिष्ट प्राकृत विद्याविदों ने भाग लिया।

सेमिनार के अध्यक्ष थे प्राच्य विद्याओं के धुरन्धर विद्वान्, भण्डारकर ओरियण्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट, पूना के डायरेक्टर डॉ० पी० एल० वैद्य तथा डायरेक्टर थे प्राकृत विद्याओं के वरिष्ठ विद्वान् डॉ० आ० ने०, उपाध्ये।

तीन दिनों के विचार विमर्श के उपरान्त प्राकृत विद्याविदों ने प्राकृत वाङ्मय के अध्ययन-अध्यापन, अनुसन्धान-प्रकाशन आदि के विषय में जो निष्कर्ष प्रस्तुत किये, उन के विषय में विस्तृत विवरण आगे पृष्ठ १७१ पर दिया गया है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जैन बिबलियोग्राफ़ी

पं० जुगलकिशोर 'मुख्तार'

पिछली दो शताब्दी सम्बन्धी जैन साहित्य और संस्कृति के अध्ययन एवं शोध कार्य की जानकारी देने वाली पुस्तक यदि सम्पन्न करा कर प्रकाशित की जाये तो बहुत अच्छा होगा। इस के लिए सभी देशी-विदेशी रिसर्च स्कॉलर्स से सम्बन्ध स्थापित करना होगा और अनेक लायब्रेरियों में उपलब्ध साहित्य को टटोलना होगा।

डॉ० ज्योतिप्रसाद जैन

१९वीं और २०वीं—इन दो शताब्दियों में भारत तथा विदेशों में विभिन्न विद्वानों और संस्थाओं-द्वारा किये गये जैन साहित्य और संस्कृति सम्बन्धी अध्ययन शोधकार्य के विषय में एकत्रित जानकारी कोई पुस्तक, मेरे जानने में, अभी तक प्रकाशित नहीं हुई है। पिछली शती के अन्त के लगभग डॉ० गिरनाट ने फ्रेंच भाषा में जैन बिबलियोग्राफ़ी एवं एपीग्राफ़ी की एक रिपोर्टरी प्रकाशित की थी। वह अपूर्ण भी थी और अब अप्राप्य है। अँगरेज़ी में भी उस का कोई अनुवाद नहीं हुआ है। उस के बाद रा० ब० पारसदास ने एक छोटी-सी बिबलियोग्राफ़ी प्रकाशित की थी—वह भी अप्राप्य है। तदनन्तर बा० छोटे लाल जी ने जैन बिबलियोग्राफ़ी प्रकाशित की जिस में उन्हों ने सन् १९२५ तक के सन्दर्भों को एकत्रित करने का प्रयत्न किया था। वह भी, उस समय तक के लिए भी पूर्ण, निर्दोष तथा सर्वथा प्रामाणिक शायद नहीं है। सुना था कि वह उस का उत्तरार्ध भी तैयार करा रहे हैं, पता नहीं उस का क्या रहा ? किन्तु यह सब मात्र सन्दर्भ सूचियाँ ही रहीं, उन से किये गये कार्य की पूरी तो क्या, सन्तोषजनक

९

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पर्याप्त जानकारी भी प्रायः नहीं होती। कर्नइन्स्टीटयूट की बिबलियोग्राफ़ी-जैसा प्रकाशन हो तो वास्तव में उपादेय हो सकता है।

इस सम्बन्ध में कई समस्याएँ हैं—एक तो जैन-सम्बन्धी विदेशी साहित्य अँगरेज़ी तक ही सीमित नहीं है, फ्रेंच, जर्मन, इटेलियन, रूसी और स्कॅडिनेवयन आदि अन्य भाषाओं में भी पाया जाता है और उन अन्य भाषाओं की सामग्री का बहुधा अँगरेज़ी अनुवाद भी नहीं हुआ। दूसरे, विशेषकर इस शती के प्रारम्भ तक की बहुत सी सामग्री ऐसी है जो अब अप्राप्य है अर्थात् आउट आफ़ प्रिण्ट है। वह सब एकत्रित अभी भी की जा सकती है, किन्तु इतनी बिखरी हुई है कि किसी एक स्थान में उसे प्राप्त करना प्रायः असम्भव है, शायद ही कोई ऐसी लायब्रेरी हो जहाँ वह सब प्राप्त हो जाय। मुझे तो शंका है कि दो-तीन दशक के भीतर उस में से बहुभाग सामग्री शायद सदा के लिए लुप्त हो जाय।

इस बात की परम आवश्यकता है कि उक्त समस्त सामग्री को जिस प्रकार बने संग्रह करके, शुद्ध टाइप प्रतियाँ बना कर सुरक्षित कर लिया जाय और उस का व्यवस्थित वर्गीकरण एवं सम्पादन कर के उसे विभिन्न जिल्दों में प्रकाशित कराया जाय। यह कार्य बड़ा श्रम, द्रव्य, और समय साध्य है—लाइफ़ लांग वर्क है, किन्तु परम उपयोगी एवं परमावश्यक। खेद है कि हमारे यहाँ कई शोध संस्थाएँ चल रही हैं और पैदा होती जा रही हैं, किन्तु इस ओर किसी का ध्यान नहीं है। सुनिश्चित एवं व्यवस्थित योजना बनायी जाये और एक चार-पाँच उपयुक्त व्यक्तियों का छोटा-सा विभाग बना कर यह कार्य किया जाय, तो यह कार्य सुगमता से हो सकता है।

पं० दलसुख भाई मालवणिया

डॉ० गेरिनो ने १९२६ तक के संशोधन की सूची प्रकाशित की है और उस के बाद के संशोधन की श्री छोटेलाल जी जैन ने। किन्तु उन दोनों में जो त्रुटि रह गयी है उस की पूर्ति करने की आवश्यकता तो है ही। यदि ज्ञानपीठ यह कार्य अपने हाथ में ले तो उत्तम रहेगा।

■ ■

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

संगोष्ठी : चर्चनीय विषय

सुझाव और सम्मतियाँ

जैन साहित्य से सम्बन्धित अनेक विषय हैं, जिन पर सम्मिलित रूप से विचार करना अपेक्षित है। सामान्यतया हम इन बातों को ले सकते हैं—

१. जैन साहित्य के बहुत से प्राचीन ग्रन्थों के सन्दर्भ और उल्लेख ग्रन्थान्तरों में मिलते हैं, किन्तु मूल ग्रन्थ उपलब्ध नहीं होते। क्या यह सम्भव है कि उन ग्रन्थों के पुनराकलन के प्रयत्न किये जायें। स्व० डॉक्टर महेन्द्रकुमार न्यायाचार्य ने एक ऐसा प्रयत्न किया भी था, जिस के फलस्वरूप भट्ट अकलंक के सिद्धिविनिश्चय नामक ग्रन्थ का उस की एक मात्र उपलब्ध टीका से पुनः संकलन किया गया, जो भारतीय ज्ञानपीठ द्वारा प्रकाशित है।

२. प्राचीन जैन साहित्य के अनेक ग्रन्थ अभी भी अप्रकाशित हैं। उन का सम्पादन और प्रकाशन बहुत ही मन्थर गति से हो रहा है तथा गिने-चुने विद्वान् ही इस कार्य में लगे हुए हैं। यह साहित्य जल्दी से जल्दी सुसम्पादित हो कर प्रकाश में आये, इस के लिए सुचिन्तित योजना क्या हो सकती है।

३. जैन साहित्य के अनेक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ पचासों वर्ष पहले प्रकाशित हुए, किन्तु अब उपलब्ध नहीं हैं। ऐसे ग्रन्थों के पुनः प्रकाशन के विषय में किस प्रकार क्या सोचा जाना चाहिए।

४. जैन साहित्य के विषय में पहले की अपेक्षा जिज्ञासा बढ़ी है, किन्तु हर व्यक्ति प्राचीन गूढ़ ग्रन्थों को नहीं पढ़ सकता। वह आज की भाषा और शैली के माध्यम से अपनी जिज्ञासा पूरी करना चाहता है। इस प्रकार के साहित्य के निर्माण के विषय में क्या हो सकता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

५. युग की आवश्यकता के अनुरूप कोश, बिब्लियोग्राफी, इनसाइक्लोपीडिया, इतिहास आदि के निर्माण की क्या योजना हो सकती है।

६. विश्वविद्यालयों में जैन साहित्य और संस्कृति से सम्बन्धित विषयों पर शोध-कार्य की प्रगति इधर काफ़ी तेज़ हुई है, पर गति तेज़ होने के साथ ही उस से सम्बन्धित और अनेक प्रश्न खड़े हुए हैं—

(क) शोध-प्रबन्ध तैयार होते हैं। उन पर शोध-कर्ता को पी-एच० डी० या डी० लिट् उपाधि मिल जाती है। किन्तु प्रबन्ध प्रकाशित न हो पाने के कारण उन शोध उपलब्धियों का मूल्यांकन नहीं हो पाता। कुछ प्रबन्ध दीर्घ अन्तराल के बाद प्रकाशित हुए या होते हैं जिस से उन का महत्त्व भी कम हुआ—कम हो जाता है।

(ख) उचित निर्देशन के अभाव में अथवा शोध-कर्ता के पर्याप्त परिश्रम की कमी के कारण कई एक शोध-प्रबन्ध काफ़ी घटिया स्तर के आ रहे हैं, जिस के कारण जैन साहित्य का महत् और उज्ज्वल पक्ष उजागर होने की अपेक्षा उस पर धूमिलता आती देखी जाती है।

(ग) किस विषय पर शोध कार्य हो चुका है, किस पर हो रहा है इस बात की जानकारी न होने से एक-एक विषय पर कई-कई विद्वान् कार्य करते हैं जिस से विषय की पुनरावृत्ति होती है तथा समय और शक्ति का अपव्यय भी।

(घ) जैन साहित्य पर हो रहे शोध-कार्य में जैन धर्म और दर्शन के मौलिक सिद्धान्तों पर अभी तक बहुत कम कार्य हुआ है। जैन साहित्य के आधार पर प्रायः अन्य-अन्य विषयों पर शोध-कार्य हो रहा है।

(ङ) विश्वविद्यालयों में जैन साहित्य पर अनुसन्धान कार्य कराने में रुचि लेने वाले विद्वानों की कमी के कारण शोधार्थी को यहाँ-वहाँ भटकना पड़ता है।

७. जैन साहित्य के मुद्रण और प्रकाशन की कठिनाइयाँ भी अनेक प्रकार की हैं। प्राचीन जैन साहित्य का मुद्रण-प्रकाशन साधारण आधुनिक साहित्य की

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अपेक्षा विशेष प्रकार का है। इस लिए मुद्रण में समय और प्रकाशन में पैसा अधिक व्यय होता है। फलतः बहुत कम साहित्य प्रकाश में आ पा रहा है।

८. जैन साहित्य का प्रकाशन करने वाली संस्थाएँ कम ही हैं। उस से भी कम हैं प्रकाशन में सक्रिय रूप से हाथ बटाने वाले। इस लिए साहित्य और भी कम निकलता है। क्या किया जाये, जिस से इस कार्य में गति आये।

९. जैन साहित्य के प्रकाशन पर पहले की अपेक्षा व्यय अधिक बढ़ गये हैं; परिणामस्वरूप साहित्य महँगा पड़ रहा है, अतएव साधारण क्रेता के लिए दुष्प्राप्य होता जा रहा है। इस दिशा में क्या किया जाये।

१०. जैन साहित्य पर कार्य करने वाले विद्वानों की संख्या बहुत सीमित है, जब कि कार्य का क्षेत्र बहुत विस्तृत है। इस लिए यह आवश्यक है कि उन के समय को महत्त्वपूर्ण कार्यों में लगाया जाये।

११. जैन साहित्य के प्रसार और विक्रय की स्थिति बहुत ही असन्तोषजनक है। इस के कारण भी कई हैं। पर कारण जो भी हैं, विक्रय की कमी का प्रभाव नये साहित्य के प्रकाशन पर पड़ा है, पड़ता है। इस लिए आवश्यक है कि इस पर गहराई से विचार किया जाये।

सुझाव और सम्मतियाँ

क्षु० दयासागर

१. प्राचीन सन्दर्भ एवं उल्लेख प्राप्त अनुपलब्ध ग्रन्थों के प्राप्त्यर्थ मुझे लगता है कि (१) भारत व्याप्त समस्त जैन मठ (२) जैन मन्दिरस्थ प्रसिद्ध ग्रन्थ-भण्डार (३) अच्छे विद्वानों के पते (विद्वत्परिषद्, शास्त्रीपरिषद्, एवं सोनगढ़स्थ) (४) भारतबाह्य जैन-साहित्यादि सामग्री-प्राप्ति के स्थान इनकी लगभग निःशेष सूची बन जाय। तत्पश्चात् विद्वज्जनों को सुयोग्य धनराशि एवं सुविधाएँ देकर ग्रन्थान्वेषणार्थ योग्य मार्गदर्शन (Hints) भी देकर ज्ञानपीठ-द्वारा तत्तत्स्थानों में भेजा जाये।

२. प्राचीन ग्रन्थ शीघ्रातिशीघ्र सुसम्पादित हो प्रकाश में आने के लिए समस्त विख्यात जैन पत्रिकाओं में प्रकाशनीय ग्रन्थों की सूची प्रकट की जाये तथा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उनका सम्पादन किस ढंग का होना अपेक्षणीय है इसे भी प्रकट कर विद्वानों को सूचित किया जाये कि वे किस ग्रन्थ का सम्पादन करने में सुयोग्य अधिकार रखते हैं सो लिखें एवं यह भी लिखें कि कहाँ तक शिक्षा प्राप्त की है, कब और कहाँ से प्राप्त की है; चालू उम्र एवं अब तक का इस दिशा में अनुभव आदि भी लिखें। जब ये नाम आ जायें तो ज्ञानपीठ में निश्चित दिन उन्हें आमन्त्रित कर प्रत्यक्ष चर्चादि कर उनमें से अत्यधिक योग्यों की विशिष्ट ग्रन्थ के सम्पादनार्थ नियुक्ति हो जावे। तदर्थ मान-धन, कालमर्यादादि भी निश्चित की जावे। सम्पादन घटिया स्तरका न होवे एतदर्थ समस्त शक्य सावधानी बरती जाये।

३. पचासों वर्ष पूर्व प्रकाशित किन्तु अधुना अनुपलब्ध ऐसे....काशी से जो संस्कृत गिने-चुने मूल उत्कृष्ट ग्रन्थों का 'प्रथम गुच्छक' प्रकाशित हुआ था जो अनुपलब्ध सा हो गया है ऐसे ग्रन्थों के पुनः प्रकाशन के विचारार्थ एक योग्य समिति बन जाये और विचारा जाये कि आज अमुक ग्रन्थ के पुनः प्रकाशन की आवश्यकता कितनी है या नहीं है; यदि है तो उस में आज क्या न्यूनाधिकता अपेक्षित है आदि। तत्पूर्व विद्वज्जनों को व्यक्तिगत पत्र लिख कर एवं पत्रिकाओं में भी सूचना प्रकट कर ज्ञात करें कि कौन से पूर्व-प्रकाशित अनुपलब्ध ग्रन्थ ऐसे हैं जो पुनः प्रकाशनीय हैं।

४. प्राचीन गूढ़ ग्रन्थ आज के जिज्ञासु को आज की भाषा एवं शैली में देना हो तो म० भगवानदीन-जैसे भाषा-लालित्य एवं सारल्य के द्वार से गूढ़ विषयों को सहज ज्ञेय बना डालने में समर्थ ऐसे भाषाशिल्पी अधिकारी लेखकों की खोज की जावे। मुनि नथमल आदि भी इस कोटि में आ सकेंगे। उन्हें आमन्त्रित कर या पत्रव्यवहार-द्वारा बहुचर्चा कर योग्य विषय सौंपा जाय। प्राचीन जैन सैद्धान्तिक, दार्शनिक आदि पारिभाषिक शब्दों के लिए तत्पर्याय-वाची, तद्भावग्राही सरलातिसरल शब्दों की अन्य सूची ऐसे भाष-शिल्पियों से निर्माण करवायी जाय। जैसे सप्त-तत्त्व के लिए आज चेतन[1]-अचेतन[2]-आगमन[3]-बन्धन[4]-रोधन[5]-गलन[6]-मोचन[7] यों भी कहा जा सकेगा आदि। क्षु० जिनेन्द्र वर्णी जी आदि जैसे ललित भाषाभाषी एवं गूढ़-शास्त्र-मर्मज्ञों का इस दिशा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

में लाभ खूब लिया जा सकता है। फिर प्रकाण्ड विदग्धों से बहुचर्चित एवं निरीक्षित हो कोई सैद्धान्तिकादि त्रुटि उन में न रहे यों सावधानी बरती जाये। तत्पश्चात् कृति अत्यन्त सुन्दर बन पड़े तो जगत् के कोने-कोने में सभी प्रमुख भाषाओं में भाषांन्तरित हो वह पहुँचे। आदि।

५. पी-एच्० डी० या डी० लिट्० के अर्थ विषय ही घटिया स्तर के या मामूली न रखे जायें प्रत्युत गम्भीर, ठोस एवं उच्च कोटि के रखे जायें जिस से घटिया स्तर के प्रबन्ध पर कुछ रोक लग जायगी।

—ऐसे विषयों की सूची बनकर अशेष विश्वविद्यालयों में वह जाये। परस्पर विश्वविद्यालयों की और फिर एक बृहत् सूची बन जाय अमुक दिनांक के अन्दर। इस से विषय की पुनरावृत्ति टल सकेगी एवं अति क्षुद्र विषय सलाह-मशविरों-द्वारा हटाया जा सकेंगे। समय व शक्ति का अपव्यय भी रुक सकेगा, शोधार्थी को इतस्ततः भटकना थोड़ा-सा पड़े, अधिक नहीं एतदर्थ प्रत्येक विश्वविद्यालय में एक जैन सीट (Jain Chair) अवश्यमेव होने के लिए बहुत बड़ी क्रान्ति जैन-जगत् की तरफ़ से उफन उठनी चाहिए। ज्ञानपीठ इस में अतिविशाल सहयोग देवे तथा अतिशक्तिशालिता से अग्रसर होवे।

—हर युनिवर्सिटी के यहाँ जैन शोध-प्रबन्ध लिखनेवालों के लिए ज्ञानपीठ से एक अत्यन्त महत्त्व का पत्र जाये कि प्रबन्ध प्रस्तुत करने से पहले ज्ञानपीठ में परीक्षण-निरीक्षण सुविकसन-सुसंमार्जन-परिमार्जन-सुपरिष्कारादि के लिए आ जाय। ज्ञानपीठ के अधिकारी विदग्ध उस प्रबन्ध पर बहुत कुछ तैयारी कर फिर एक दिन प्रबन्ध-लेखक को आमन्त्रित कर उसे नवीन उत्साह एवं अति-महत्त्वपूर्ण सुयोग्य सामग्री से ऐसे ओतप्रोत कर दे जिस से उस का प्रबन्ध एक ऐसी अनुपम आभासे चमक उठे कि विदेशों तक उस की रश्मियाँ जा टकरावें और वहाँ के विद्वानों की आँखों को चकाचौंध कर डाले।

—अत्युत्तम प्रबन्धों को ज्ञानपीठ स्वयं ही आलोकित-प्रकाशित कर देवे। घटिया स्तर के प्रबन्ध न भी प्रकाश में आयें तो विशेष हानि नहीं बल्कि प्रकाश में आने से हानि हो सकेगी।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

६. जैन साहित्य उथला (Shallow) होकर वहुत संख्या में प्रकाश में आ रहा है। ऐसा संख्यात्मक नहीं गुणात्मक साहित्य हो। (Quantity) नहीं (Quality) की दृष्टि से साहित्य बाहर पड़े। तथा अत्युत्तम दर्जा की एक पुस्तक प्रकाश में आते ही ज्ञानपीठ उसे भारतीय प्रमुख १४ या १८ भाषाओं में सुन्दर रूप से प्रकाशित करने की सुयुक्तिपूर्ण योजना वना डाले। विदेशी प्रमुख भाषाओं में भी प्रकाशित करने की दृष्टि रखे। मुद्रणादि उन-उन भाषिक प्रान्तों के ही सुविख्यात मुद्रणालयों में हो परन्तु हो ज्ञानपीठ की ओर से।

७. न्याय, अध्यात्म, कर्म, करणानुयोग, प्रथमानुयोग, चरणानुयोगादि के खास अधिकारी विद्वान् (Experts or specialists) खोज-खोज कर निकाले जायें क्योंकि कुछ तो जन-नेत्रों के सामने आये हैं किन्तु कुछ किसी देहात में ही विना ख्याति के रह चुके हों। फिर वे जीविकादि कैसे चला रहे हैं इस की पूरी जानकारी प्राप्त कर उन के समय को महत्त्वपूर्ण कार्यों में अधिक लगाने के लिए क्या किया जा सकता है सो देखें। ज्ञानपीठ के पास भारतव्याप्त महाधनाढ्य एवं दानशूर जैनों का ब्यौरा रहे ताकि योग्य प्रसंग पर योग्य-योग्य शेरों को जगाया जा सके और कार्य सुसफलित किया जा सके।

८. सोनगढ़-साहित्य या हिन्दुओं में गीता प्रेस, गोरखपुर का साहित्य बहुत ही कम मूल्य में सुलभ होने से विशाल अनुपात में प्रसृत होता जा रहा है। गुप्त दानी आदि बड़ी धनराशि पुस्तक-प्रकाशन के कार्य में मूल्य अत्यल्प कराने हेतु प्रदान करेंगें तो वड़ी-बड़ी क़ीमत की पुस्तकें सहज सुलभ होने से साहित्य भारत-भर में ज़ोर-शोर से फैल उठेगा और भारत के बाहर भी।

डॉ० ज्योतिप्रसाद जैन, लखनऊ

१. ज्ञात किन्तु अनुपलब्ध प्राचीन ग्रन्थों का—जिन-जिन का और जितना सम्भव हो, पुनराकलन करने-कराने का प्रयत्न अवश्य किया जाना चाहिए। सर्वनन्दि का लोक विभाग, कवि परमेष्ठी का वागर्थसंग्रह प्रभृति ऐसे अनेक ग्रन्थ हैं।

२. अप्रकाशित प्राचीन जैन साहित्य के प्रकाशन को प्रगति देने के लिए अच्छा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

होगा यदि ऐसी समस्त रचनाओं को एक स्थान पर संग्रह कर लिया जाये और दो एक विद्वान् नियुक्त करके उन के संशोधित पूर्ण पाठ तैयार करा लिये जायें। तदनन्तर उन में से एक एक करके प्रस्तावना, अनुवाद, टिप्पणादि सहित प्रकाशित किये जायें। अन्तिम कार्य को स्तरीय प्रकाशन संस्थाएँ परस्पर में बाँट ले सकती हैं।

३. जो महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ ५०-६० वर्ष पूर्व प्रकाशित हुए थे उन के पुनःसंस्करण अवश्य हों, केवल पुनर्मुद्रण नहीं। इस बीच हुई जानकारी एवं उपलब्धियों का सम्यक् उपयोग करके उक्त संस्करणों को यथासम्भव अप-टू-डेट बनाने का प्रयत्न होना उचित होगा।

४. ऐसा साहित्य तो धीरे-धीरे वृद्धिगत हो हो रहा है और समय की गति के अनुसार होता भी रहेगा। किन्तु ऐसी नवीन रचनाओं को प्रकाशित करते समय यह देख लेना उचित होगा कि प्रामाणिकता का हनन न हो। जो बात कही जाये वह आगम, सिद्धान्त अथवा स्वीकृत अनुश्रुतियों के विरुद्ध न हो जब तक कि वह अधुनातन शोध खोज के परिणामों पर ही आधारित न हो।

५. इस युग में विभिन्न प्रकार के कोषों, बिबलियोग्राफी, इनसाइक्लोपीडिया' इतिहास आदि सन्दर्भ ग्रन्थों के निर्माण की आवश्यकता के विषय में तो कोई सन्देह किया ही नहीं जा सकता। किन्तु ये कार्य वैयक्तिक प्रयत्नों पर छोड़ने के बजाये समर्थ संस्थाओं के सिपुर्द किये जाने चाहिए। ऐसी संस्थाएँ न हों तो उन की स्थापना का प्रयत्न किया जाये।

६. शोध-प्रबन्धों के विषय में जिन पाँच तथ्यों का उल्लेख किया गया है, वह प्रायः सब ही यथार्थ हैं। किसी एक अच्छी शोध संस्था की आवश्यकता है जिस में एक उच्चकोटि का पुस्तकालय एवं संग्रहालय हो। कम से कम दो तीन प्रौढ़ विद्वान् उस में रहें तथा अन्य अपने-अपने क्षेत्र में मान्य मनीषी सम्बद्ध रहें। यह संस्था स्वयं पी-एच० डी०, डी० लिट्, आदि कराने के चक्कर में न पड़े, किसी एक विश्वविद्यालय से भी चाहे सम्बद्ध न हो, किन्तु कहीं भी, किसी भी जैन विषय में जो कोई भी शोधार्थी कार्य कर रहा हो उस का उचित मार्गदर्शन कर सके और उसे उपयुक्त आवश्यक सामग्री उप-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लब्ध करा सके। इससे शोध विषयों में पुनरावृत्ति को भी कम किया जा सकेगा और शोध प्रबन्धों का स्तर भी ऊँचा हो सकेगा।

७. जैन साहित्य के मुद्रण-प्रकाशन की यह समस्या तो है ही और बनी भी रहेगी—कम से कम तब तक जब तक कि उस का स्तर इतना ऊँचा न उठे कि अन्यत्र भी वह उपयोगी माना जाने लगे। स्वयं जैनों में भी इन ग्रन्थों को खरीदने और पढ़ने की अभिरुचि उत्पन्न करना आवश्यक है। किन्तु व्यापारिक दृष्टि से लाभदायक होने में तो यह व्यवसाय अभी बहुत समय लेगा—ऐसा लगता है।

८. कम भले ही निकलें, किन्तु जो निकलें वह स्तरीय एवं पठनीय हों।

९. इस विषय में तो दानी लोग ही प्रकाशन संस्थाओं की सहायता कर सकते हैं।

१०. इस में कोई सन्देह नहीं है, किन्तु शायद इस का समाधान विद्वानों, और लेखकों का एक ऐसा संगठन हो सकता है, जिस में आर्थिक या व्यावसायिक गन्ध बिलकुल न हो, मात्र साहित्यिक सहयोग हो।

११. इस का उत्तर नम्बर ७ में आ चुका है। प्रचार करते रहना चाहिए इससे शनैः शनैः स्थिति में सुधार होगा।

अन्त में जैन साहित्य संगोष्ठी और स्मारिका की सफलता के लिए शुभकामना प्रेषित करता हूँ।

डॉ० प्रेमसागर जैन, बड़ौत

जहाँ तक अनुसन्धान का सम्बन्ध है, जैन साहित्य का अनुसन्धित्सु भटकता है, यह सत्य है। उसे उपयुक्त निदेशन नहीं मिल पाता। यदि प्रयत्न किया जाये तो जैन साहित्य के मर्मज्ञ विद्वान् निदेशक-रूप में स्वीकृत करवाये जा सकते हैं। विश्वविद्यालय मान लेंगे, ऐसा हुआ भी है।

वे शोध प्रवन्ध जो उपयुक्त स्तर को नहीं छूते, अप्रकाशित ही बने रहने चाहिए, या उचित परिवर्तन और परिवर्धन के बाद प्रकाश में लाये जायें।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कठोर रवैय्या अपनाने की बात है। जो शोध प्रवन्ध उत्तम हैं और जिन पर उपाधि मिल चुकी है, तुरन्त प्रकाश में आ जायें तभी उन का मूल्य है। इस का भार केवल एक संस्था ही नहीं, अपितु तीन-चार मिल कर उठायें तो उपयुक्त होगा। वैसे, अभी भविष्य में केन्द्रीय सरकार राज्य सरकारों के माध्यम से अनुसन्धान, अनुसन्धित्सु और शोध-परक सामग्री के प्रकाशन के लिए अधिकाधिक अनुदान देने वाली है, उसे सजगता-पूर्वक आर्कषित किया जा सकता है।

एक ओर प्राचीन जैन ग्रन्थ अप्रकाशित पड़े हैं, दूसरी ओर वे अनेक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ अब अनुलब्ध हैं जो ५० वर्ष पूर्व प्रकाशित हुए थे, तीसरी ओर बढ़ती हुई जिज्ञासा को सन्तुष्ट करने के लिए जैन साहित्य, दर्शन और पुरातत्त्व आधुनिक भाषा और शैली में प्रस्तुत करना है। तीनों ज्वलन्त प्रश्न हैं। मेरी दृष्टि में यदि तीन संस्थाएँ इन्हें पृथक्-पृथक् अपना लें तो कठिनाई नहीं होगी। इसी प्रकार कोश-निर्माण और विब्लियोग्राफी आदि किसी एक संस्था को ही सौंपा जा सकता है।

जैन साहित्य के मुद्रण-प्रकाशन तथा जैन विद्वानों की अल्प संख्या अवश्य ही गम्भीर विचार का विषय है। प्रकाशन पर व्यय अधिक और विक्री कम होती है, फिर अनुपूर्त्ति कैसे सम्भव हो, एक समस्या है। इस सम्बन्ध में मेरा निवेदन है कि भारत के पूरे जैन समाज में प्रतिवर्ष कम-से-कम ५० व्यक्ति ऐसे अवश्य मिल जायेंगे जो हानि-लाभ सोचे विना एक ग्रन्थ छपाने को तैयार हो जायें। किसी भी संस्था के तत्त्वावधान में कार्य सम्पन्न हो किन्तु प्रकाशक के स्थान पर उन का नाम आ जाये तो वे प्रसन्न ही होंगे। ऐसा कार्य हुआ है। बड़े पैमाने पर भी हो सकता है।

आज अनेक जैन विद्वान् जैन साहित्य की शोध-खोज और रचना में अपना पूरा समय नहीं दे पाते। यदि दे सकें तो अल्प संख्या का प्रश्न भी हल हो सकता है। इस के अतिरिक्त, अनेक अजैन विद्वान् जैन साहित्य की दिशा में मुड़ना चाहते हैं, उन्हें समय-समय पर आदर और प्रोत्साहन देने की आवश्यकता है।

ये मेरे कतिपय सुझाव हैं। संगोष्ठी में सम्मिलित होने का पूरा प्रयत्न करूँगा। उस समय तक शायद कुछ और भी सोच सकूँ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

महावीरप्रसाद जैन, मिर्जापुर

१. जैन विषय के अधिकारी विद्वानों की एक समिति बनायी जाय जो वर्ष में एक बार किसी भी स्थान पर मिल कर वर्ष-भर के अपने किये हुए कार्यों का उल्लेख करे और जैन साहित्य के उन्नयन एवं विकास हेतु वार्षिक योजना-बद्ध कार्य करे और नये-नये विद्वानों को सम्पर्क में लाये।

२. एक केन्द्रीय संस्थान की स्थापना की जाये।

३. जैन साहित्य पर शोधकार्य करनेवाली संस्थाओं का संगठन किया जाये और उन्हें समय-समय पर केन्द्रीय जैन शोध-पीठ की ओर से निर्देशन एवं मार्ग-दर्शन दिया जाये तथा एक जैन शोध मासिक पत्रिका का प्रकाशन भी किया जाये जिस में हिन्दी एवं आंग्ल भाषाओं के लेखादि हों तथा उसे सभी भारतीय विश्वविद्यालयों तथा उस से सम्बन्धित महाविद्यालयों, सार्वजनिक पुस्तकालयों एवं शोध संस्थानों को सशुल्क, अर्द्धशुल्क एवं निःशुल्क प्रेषित किया जाए।

४. जैन साहित्य शोध संस्थानों को एक-एक क्षेत्र या प्रदेश निर्धारित कर के अपने क्षेत्र या प्रदेश में फैले हुए विश्वविद्यालयों, महाविद्यालयों, पुस्तकालयों से सम्पर्क तथा जैन मन्दिरों में स्थित शास्त्र भण्डारों का सर्वेक्षण एवं सूची बनाने के कार्य को करना चाहिए और उन्हें एक दूसरे से सहयोग भी करना चाहिए। अपनी प्रगति एवं कठिनाइयों की सूचना केन्द्रीय जैन-शोध पीठ को देना चाहिए जैसे उदाहरण के लिए वीर सेवा मन्दिर को अपना कार्य क्षेत्र पंजाब, हरियाणा और दिल्ली बनाना चाहिए।

५. केन्द्रीय जैन शोध-पीठ की स्थापना वाराणसी-जैसे उपयुक्त स्थान में की जाये जिस में एक समृद्ध एवं व्यवस्थित रिफ्रेंस पुस्तकालय एवं वाचनालय हो जिस में विद्वान् रह कर ग्रन्थों का सम्पादन, लेखन, अनुवाद आदि का कार्य कर सकें तथा विद्वानों के आवास तथा निवास की निःशुल्क व्यवस्था हो।

६. भारत में राजकीय अनुदान प्राप्त एवं अप्राप्त जैन विद्यालयों पुस्तकालयों एवं शोध संस्थानों एवं मन्दिरों, शास्त्र भण्डारों, उपाश्रयों, संघ छात्रावासों

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

के व्यवस्थापकों की पृथक्-पृथक् सूची बनायी जाए और उन्हें अनिवार्य रूप से जैन साहित्य क्रय करने की प्रेरणा दी जाए, और भरसक प्रयास किया जाए।

७. साहित्य विक्री हेतु प्रकाशन संस्थाएँ अपने प्रकाशनों का एक-दूसरे से विनिमय कर के साहित्य की अधिकाधिक विक्री में योग दें तथा साहित्य क्रेताओं को कम से कम मूल्य में साहित्य क्रय करने में योग दें।

८. केन्द्रीय जैन शोध-पीठ में एक साहित्य विक्री विभाग हो जिस में समस्त उपलब्ध जैन साहित्य का संग्रह हो जिस से एक ही स्थान पर कम व्यय में साहित्य क्रय किया जा सके तथा उस की वृहत् सूची प्रकाशित कर के समस्त विश्वविद्यालयों, महाविद्यालयों एवं पुस्तकालयों को प्रेषित किया जाये।

९. विद्वानों को यह सत्प्रयास करना चाहिए कि वे समाज को ऐसी सत्प्रेरणा दें जिस से कि समाज का झुकाव पंचकल्याणक, गजरथ, सिद्धचक्र विधान आदि की ओर से कम हो कर स्वाध्याय की ओर अग्रसित हो और पर्युपण आदि पर्व पर साहित्य क्रय कर के अपनी ओर से शास्त्र भण्डारों, पुस्तकालयों, विद्यालयों एवं विद्वानों आदि को भेंट में देने की परम्परा का शुभारम्भ हो।

१०. साहित्य का प्रकाशन ऐसे आधुनिक एवं वैज्ञानिक ढंग से जो विद्वानों से ले कर जन-साधारण तक अध्ययन करने योग्य हो, जैसा कि वर्तमान में भारतीय ज्ञानपीठ वाराणसी से हो रहा है।

११. प्राकृत, अपभ्रंश आदि भाषाओं के विद्वानों की निरन्तरता बनी रहते हेतु प्राकृत शोध संस्थान, वैशाली का पूर्ण विकास किया जाये और छात्रों को आकर्षित करने हेतु छात्र वृत्तियों आदि की सुविधा दी जाये एवं उन के उत्तीर्ण होने पर उन्हें विश्वविद्यालयों, महाविद्यालयों एवं संस्थाओं में सरकार-द्वारा स्थान दिलाया जा सके, ऐसी व्यवस्था की जानी चाहिए।

१२. भारतीय विश्वविद्यालयों में पालि की भाँति प्राकृत एवं अपभ्रंश भाषा की पृथक् रूप से अध्यापन की व्यवस्था की जानी चाहिए। हाई स्कूल एवं इण्टरमीडिएट की कक्षाओं में भी प्राकृत एवं अपभ्रंश पढ़ाये जाने की व्यवस्था

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

होनी चाहिए। इस का पाठ्य क्रम बना कर प्रदेश सरकारों के शिक्षा बोर्डों के पाठ्यक्रमों में सम्मिलित कराना चाहिए। जैन समाज की अनेक शिक्षण संस्थाएँ हैं उन में इन्हें अनिवार्य रूप से पढ़वाना चाहिए।

डॉ० परमेष्ठीदास जैन, खुरई

१. दिगम्बर जैन साहित्य के प्रकाशन व सम्पादन आदि का योजनावद्ध कार्यक्रम अभी तक नहीं बना। भिन्न-भिन्न संस्थाओं व विद्वानों ने अपनी-अपनी शक्ति के अनुसार कार्य किया है। सब से पहले इस बात की आवश्यकता है कि हमें दिगम्बर जैन साहित्य के सम्पादन हेतु एक योजना बना लेनी चाहिए। किस क्षेत्र में कितना कार्य होना है, इस का एक विवरण बना लेना उपयुक्त होगा। इस के लिए वरिष्ठ विद्वानों की एक समिति भी बनायी जा सकती है।

(अ) जिन-जिन ग्रन्थों पर अभी तक कार्य हो चुका है, उन के समीक्षात्मक एवं सांस्कृतिक अध्ययन भी लिखे जाना चाहिए।

(आ) जैन साहित्य के अनुपलब्ध पूर्व मुद्रित ग्रन्थों के सम्बन्ध में मेरा सुझाव यह है कि उसे ज्यों का त्यों न छाप कर अभी तक हुए संशोधनों को दृष्टिगत रखते हुए आधुनिक ढंग से पुनः सम्पादित कर के छपाना चाहिए।

२. उक्त योजना के तैयार हो जाने पर हमें इस कार्य में सहयोग देने वालों की सूची तैयार करनी चाहिए। कौन विद्वान् किस विभाग में कार्य करने का इच्छुक है इस का निर्णय भी सुगमतापूर्वक किया जा सकता है। इस सम्बन्ध में दो बातें विचारणीय हैं—पहली बात यह है जो विद्वान् जिस कार्य को हाथ में लें, उसे समय पर पूर्ण करने का प्रयत्न करना चाहिए। कभी-कभी यह होता है कि कार्य तो हाथ में ले लिया जाता है कि लेकिन कई वर्ष तक उसे प्रारम्भ ही नहीं करते। यदि प्रारम्भ कर देते हैं तो बीच में ही छोड़ देते हैं। इसलिए यह आवश्यक है कि एक विद्वान् को समय की सीमा के साथ कार्य दिया जाना चाहिए, उस की समाप्ति के बाद ही दूसरा कार्य

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दिया जाये। दूसरी बात यह है कि वर्तमान समय में जैन साहित्य पर कार्य करने के लिए ऐसे नवीन विद्वानों की पर्याप्त संख्या मिल सकेगी जिन्होंने अभी तक साहित्य सम्पादन सम्बन्धी अनुभव प्राप्त नहीं किया है, उन्हें किसी विद्वान् के पथप्रदर्शन में कार्य करने को कहा जाये।

३. जहाँ तक सम्भव हो जैन साहित्य सम्बन्धी उपयुक्त शोध प्रवन्धों को शीघ्र प्रकाशित करने की व्यवस्था कर देनी चाहिए ताकि शोध-प्रवन्ध लिखने वालों को जैन साहित्य पर काम करने की प्रेरणा मिल सके और जैन साहित्य पर अधिक से अधिक काम हो सके।

४. जैन साहित्य पर आधारित कथा साहित्य तथा बाल साहित्य पर अभी तक उल्लेखनीय कार्य नहीं हुआ है। अतः इस कार्य की ओर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है।

५. जैन साहित्य के प्रसार और विक्रय की स्थिति बहुत ही असन्तोषजनक है, इस में दो मत नहीं हो सकते। इस सम्बन्ध में विचार करने की आवश्यकता है। लोगों को पढ़ने की तरफ़ रुचि नहीं है : जिनकी रुचि है, वे व्यय नहीं करना चाहते हैं, जो व्यय कर सकते हैं, वे इसे अनावश्यक समझते हैं। इस कार्य में विद्वानों तथा अन्य सामाजिक संस्थाओं का सहयोग लिया जा सकता है। ये लोग समाज के सम्पर्क में हमेशा आते रहते हैं। उन्हें उत्साहित कर के इस कार्य में कुछ सफलता प्राप्त की जा सकती है।

डॉ० त्रिलोचन पाण्डेय, गोरखपुर

१. प्राकृत और अपभ्रंश के समस्त उपलब्ध साहित्य का प्रकाशन प्राथमिक कार्य है तभी उस की व्यापकता के साथ उस का प्रभाव व महत्त्व स्पष्ट हो सकेगा। शोधार्थियों के लिए यह सामग्री उपलब्ध हो जाने पर अन्वेषण को नवीन दिशाएँ खुल सकती हैं। इस कार्य के लिए यदि किसी ग्रन्थ की समस्त प्रतिलिपियाँ अभी न भी मिलें तो उपलब्ध पाठ का ही सम्पादन कर दिया जाये। विशिष्ट अध्ययन आगे होते रहेंगे।

२. जैन ग्रन्थों के अनुवाद सरल हिन्दी में प्रस्तुत किये जायें ताकि जन-साधारण के लिए वे बोधगम्य हों। अन्य भारतीय भाषाओं में भी उन के अनुवाद

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रकाशित किये जायें। इस प्रकार ग्रन्थों की लोकप्रियता बढ़ेगी और भारतीय संस्कृति के निर्माण में जैन साहित्य का योगदान स्पष्ट होता जायेगा।

३. प्राकृत व अपभ्रंश भाषा का तो अभी तक कोई कोश है ही नहीं। कोश बन जाने पर उस का आधार ले कर आधुनिक भारतीय भाषाओं के विकास में अपभ्रंश का महत्त्व समझा जा सकता है। पुराण-काव्यों, चरित-काव्यों के कोष भी उपयोगी होंगे। ये कोष कवियों से सम्बद्ध भी हो सकते हैं जैसे स्वयम्भू कोष। जैन साहित्य का इतिहास भी अभी वैज्ञानिक आधार पर नहीं लिखा गया। इसे यथाशीघ्र प्रस्तुत किया जाए।

४. जैन साहित्य पर विश्वविद्यालयों में शोध-कार्य बढ़ाना आवश्यक है। इस के लिए प्राचीन भाषा व साहित्य पर कार्य करने वालों की विशिष्ट आर्थिक सहायता देने अथवा पुरस्कृत करने की योजना पर विचार किया जाना चाहिए।

५. जैन साहित्य पर काम करने वाले विद्वान् कम हैं। इस के लिए जैनेतर नवयुवकों—विशेष कर प्रतिभाशाली छात्रों को भी इन विषयों की ओर आकर्षित किया जाये। नये लेखकों, शोधार्थियों को संगठित करना आवश्यक है। इस के लिए परस्पर विचारों को नियमित रूप से आदान-प्रदान करना होगा अतः विशेष गोष्ठियाँ आदि आयोजित की जायें। कोई संस्था भी इस कार्य को संचालित कर सकती है। फिर विभिन्न गोष्ठियों को उक्त साहित्य की विशिष्ट धाराओं के साथ भी नियोजित करना उपयोगी होगा।

६. विश्वविद्यालयों या अन्य शोध-संस्थानों में एक परिपत्र भेज कर जैन साहित्य पर कार्यकर्ताओं की सूची बनायी जाये और उन के व्यवस्थित अध्ययन के लिए वहाँ के अधिकारियों को यथासम्भव सहायता दी जाये। इस क्षेत्र के विशिष्ट विद्वानों की एक सूची तैयार करें जो शोधकार्य में संलग्न व्यक्तियों का दिशा-निर्देशन करते रहें। पुनरावृत्ति से बचने के लिए सर्वत्र स्वीकृत विषय भी तालिकाओं-द्वारा उपस्थित किये जा सकते हैं जो अध्यापकों के समय एवं शक्ति के अपव्यय को बचायेंगी। इस प्रकार शोधकार्य के लिए उपर्युक्त निर्देशक भी तैयार होते चलेंगे।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पं० बालचन्द्र सिद्धान्तशास्त्री, दिल्ली

१. अप्रकाशित प्राचीन ग्रन्थों के सम्पादनार्थ अनुभवी विद्वानों को—विशेष कर नये निकलने वाले विद्वानों को—प्रोत्साहित किया जाये। इस के लिए उन्हें उपयुक्त पारिश्रमिक देने के अतिरिक्त उन की अन्य कठिनाइयों को भी दूर किया जाये। इस कार्य में संलग्न विद्वान् और प्रकाशन-संस्था दोनों को ही व्यापारिक मनोवृत्ति से अलिप्त रहना सफलता का साधक होगा। साथ ही विविध ग्रन्थभण्डारों के अधिकारियों को भी सम्पादनोपयोगी सामग्री हस्तलिखित प्राचीन प्रतियों आदि—के देने के लिए प्रेरित किया जाये।

२. पूर्व प्रकाशित अनुपलब्ध ग्रन्थों के सुसम्पादित रूप में पुनर्मुद्रण के लिए कुछ विशिष्ट व्यक्तियों को—जो ऐसे ग्रन्थों के आधुनिक पद्धति से सम्पादन व प्रकाशन के आर्थिक भार को वहन कर सकते हों—प्रेरित किया जाये। ग्रन्थ के मुखपृष्ठ पर ऐसे महाशयों के नामोल्लेख के अतिरिक्त उन के परिचय और चित्र आदि देने की व्यवस्था की जा सकती है।

३. जैन साहित्य और संस्कृति से सम्बन्धित शोधकार्य को सर्वांग सुन्दर सम्पन्न कराने के लिए यदि सम्भव हो तो दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों ही सम्प्रदायों के गणनीय विद्वानों की, अन्यथा दिगम्बर विद्वानों की ही—एक समिति स्थापित की जाये जो अपने तत्त्वावधान में इस महत्त्वपूर्ण कार्य के सम्पन्न कराने की व्यवस्था करे। प्रत्येक शोधकर्ता को उस के निर्देशानुसार ही अनिवार्य रूप से अपना शोधप्रबन्ध तैयार करना चाहिए।

४. यदि भारतीय ज्ञानपीठ जैसी सम्पन्न संस्था उपयोगी जैन साहित्य के सम्पादन और प्रकाशन में पड़ने वाले आर्थिक भार को वहन करना स्वीकार कर ले तो तत्सम्बन्धी कठिनाइयाँ कुछ अंश में कम हो सकती हैं। अन्य प्रकाशन-संस्थाओं का सम्बन्ध उस से स्थापित किया जा सकता है।

५. अधिकांश जैन मन्दिरों में पर्याप्त धन विद्यमान है, जिस का कुछ भी सदुपयोग नहीं हो रहा है। यदि ऐसे ५०० जिनमन्दिरों का परिचय प्राप्त कर उन्हें नवीन प्रकाशित होने वाले प्रत्येक ग्रन्थ का अनिवार्य ग्राहक बना लिया जाये तो ग्रन्थविक्रय का प्रश्न कुछ हल हो सकता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

डॉ० जगदीशचन्द्र जैन, बम्बई

संभवतः मैं उपस्थित न हो सकूँ, अतएव इस सम्बन्ध में अपने कुछ विचार लिख कर भेज रहा हूँ।

१. योजना पर प्राकृत, संस्कृत, अपभ्रंश एवं हिन्दी साहित्य के अध्ययन-अध्यापन तथा सृजन के रूप में विचार-विमर्श किया जाये।

२. अनेक दृष्टियों से प्राकृत भाषाओं का यथोचित अध्ययन अभी तक नहीं हो पाया, इस ओर ध्यान दिया जाये। प्राकृत कोश, इनसाइक्लोपोडिया, काव्य-संग्रह, कथा-कहानियाँ आदि के निर्माण की योजना बने।

३. अपभ्रंश के अध्ययन को प्रोत्साहित किया जाये। अपभ्रंश और हिन्दी का अनेक दृष्टियों से तुलनात्मक अध्ययन किया जाये। विश्वविद्यालयों के पाठ्य-क्रम को ध्यान में रखते हुए पाठावली आदि तैयार की जाये। हिन्दी के व्युत्पत्तिकोश आदि की योजना पर भी विचार किया जा सकता है जिस के लिए प्राकृत और अपभ्रंश का ज्ञान अनिवार्य है।

४. दिगम्बर, श्वेताम्बर और बौद्ध परम्परा के प्राचीन आगमों के तुलनात्मक अध्ययन की योजना पर कार्य हो सकता है।

५. जैन संस्कृति के इतिहास के निर्माण की योजना तैयार की जा सकती है जिस में जैन कला (स्थापत्य, शिल्प, चित्र) का भी समावेश रहे।

६. जैन-अजैन पाठकों के लिए हिन्दी में सर्व-सामान्य लौकिक साहित्य का निर्माण किया जाये। विपुल प्राकृत कथा साहित्य का इस दृष्टि से उपयोग किया जाये।

७. प्रश्न है कि इस महान् कार्य को हाथ में लेने के लिए ऐसे योग्य विद्वान् कहाँ से आयें जो वैज्ञानिक दृष्टिकोण रखते हों। विद्वानों की कमी अवश्य है, किन्तु जितने भी विद्वान् उपलब्ध हैं, उन के सहयोग से फिलहाल एक छोटे स्तर पर कोई ठोस कार्य आरम्भ किया जा सकता है। कितने ही विश्वविद्यालयों में प्राकृत, संस्कृत, अपभ्रंश और हिन्दी पर अनेक विद्वान् शोध-कार्य कर रहे हैं, उन का सहयोग प्राप्त किया जा सकता है और साथ ही नये विद्वानों को इस क्षेत्र

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

में आने के लिए प्रोत्साहित किया जा सकता है। शिवा जी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर में आयोजित प्राकृत गोष्ठी के अवसर पर प्राकृत के विद्वानों की उपस्थिति निश्चय ही आशाजनक थी। इन सब को तथा अन्य विद्वानों को संगठित कर उन्हें कार्य-भार सौंपा जाये। उदाहरणार्थ, मेरे निर्देशन में स्वयंभूकृत पउमचरिउ तुलसीकृत रामचरित मानस के तुलनात्मक अध्ययन पर पी-एच० डी० उपाधि-प्राप्त तथा जैन अपभ्रंश दोहा पर पी-एच० डी० का शोध प्रबन्ध लिखने में व्यस्त स्थानीय कालेज के प्रोफ़ेसरों को कोई कार्य सौंपा जा सकता है। इसी प्रकार अन्य विश्वविद्यालयों में भी विद्वान् कार्यकर्ता उपलब्ध हो सकेंगे। इन विद्वानों को किसी संस्था की ओर से अमुक कार्य करने के लिए दिया जाये जिस के लिए उचित पारिश्रमिक आदि की व्यवस्था हो। (आपको स्मरण होगा, मलालसेकरकृत 'पाली प्रापरनेम्स' के आधार पर 'प्राकृत प्रापर नेम्स' पुस्तक की एक योजना कुछ वर्ष पूर्व भारतीय ज्ञानपीठ के विचारार्थ प्रेषित की गयी थी)।

८. **शोध प्रबन्धों का प्रकाशन**—शोध-प्रबन्धों के प्रकाशन की समस्या भी एक विचारणीय समस्या है। फिलहाल उन्हीं शोध-प्रबन्धों के प्रकाशन की व्यवस्था की जाये जो अधिक महत्त्वपूर्ण हों। आवश्यकता होने पर उन का संक्षिप्तीकरण किया जाये। इस सम्बन्ध में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग से सम्पर्क स्थापित किया जा सकता है।

९. **बिक्री**—प्रकाशित साहित्य की मँहगाई और बिक्री का प्रश्न भी कम जटिल नहीं। मँहगाई तो दिन-प्रति-दिन बढ़ने ही वाली है। बहुत-से देशों में सरकारी सहायता प्राप्त कर एवं अधिक संख्या में पुस्तकों का प्रकाशन कर इस समस्या को हल किया जाता है। पाठकों की अध्ययन की रुचि के परिष्कार में भी इस से सहायता मिलती है। सम्भवतः मौजूदा परिस्थिति में हमारे पास दोनों ही साधनों का अभाव है। फिर, आजकल शिक्षित-वर्ग की रुचि सम्भवतः 'नये' साहित्य अथवा राजनीति के अध्ययन की ओर अधिक है। ऐसी हालत में योजना को कार्यान्वित करने के लिए फिलहाल लघुकाय पुस्तकों की माला का प्रकाशन आरम्भ किया जाये। उदाहरणार्थ, अहमदाबाद से प्रकाशित ३२ पेजी 'परिचय ट्रस्ट' माला को लिया जा सकता है जिस में साहित्य से ले कर विज्ञान तक के विषयों का समावेश रहता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आचार्य सुमेर के० जैन, सोलापुर

महाराष्ट्र में मराठी में ग्रन्थों की रचना, अनुवाद, भाषान्तर आदि बहुत दिनों से होते आ रहे हैं। उन की सूची अब तक नहीं मिलती। डॉ० अक्कोले, डॉ० विद्याधर जोहरापुर, प्रो० लोखण्डे आदि विद्वान् मराठी के पुराने साहित्य को बटोरने और सम्पादन में लगे हुए हैं।

मैं ने अभी हाल यहाँ पं० सुमति बाई के तत्त्वावधान में कालेज ऑफ इण्डालोजी संस्था खोल रखी है। जिस की इधर बहुत आवश्यकता है। भ० महावीर जी की २५०० वीं निर्वाण तिथि के निमित्त एक साहित्य योजना हमने तैयार की है। उस की रूपरेखा अलग डाक से भेजी जा चुकी है।

कार्य तो बहुत बड़ा, समाज छोटा और ग्रन्थ विस्तार बहुत।

ज्ञानपीठ के प्रकाशन भी महँगे रहते हैं। सबसिडी दे कर उन की बिक्री होनी चाहिए। केवल लागत मूल्य की ओर देख कर काम नहीं चलेगा। जिस ललित ग्रन्थ से लाभ हो उस लाभ का उपयोग सबसिडी (कम लागत में विद्या के लिए अनुदान) देने हेतु खर्च होना चाहिए।

जिनवाणी का प्रचार करने वाला साहित्य परम्परागत ढंग से छापना योग्य नहीं। उस की दिशा बदलनी है।

हिन्दी, मराठी, कन्नड के चुने हुए लेखकों द्वारा ग्रन्थों का अंतरंग कलेवर ही बदलना होगा। जैसे कि अमेरिका करता है। देश के १० विभागों में ज्ञानपीठ की शाखाएँ हों। ज्ञानपीठ द्वारा अनुदान के रूप में उन्हें ५० प्रतिशत रकम प्रकाशन के लिए देना चाहिए और ५० प्रतिशत रकम वह शाखा अपने प्रान्त से जमा करे। इस से प्रान्तीय भाषाओं में भी जैन साहित्य का प्रचार होगा। यह योजना आप श्री साहू जी से करें। ऐसी शाखा शोलापुर में हम चला सकेंगे। जिस के द्वारा ज्ञानपीठ के ग्रन्थों का विक्रय और ज्ञानपीठ के चुने ग्रन्थों का मराठी-करण किया जायेगा।

हर एक प्रान्त में विभिन्न खण्डों में देहातों में, शहरों में अप्रकाशित ग्रन्थ पड़े हुए हैं। उन का संकलन करना आवश्यक है। ऐसे ग्रन्थों को सुरक्षित

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रखने हेतु ग्रन्थ रक्षा केन्द्र चाहिए। जिस में वे ग्रन्थ सुरक्षित रहेंगे और अभ्यास के लिए मिल सकेंगे।

विद्यापीठीय स्तर पर जैन, बौद्ध, वैदिक ग्रन्थों के अभ्यास के लिए आग्रह हों; और उस की व्यवस्था हो। यह कार्य कराने के लिए ज्ञानपीठ से सम्पर्क रखने के लिए एक कमेटी रहे। वह यह कार्य करे और ज्ञानपीठ को रिपोर्ट पेश करे।

पंचवार्षिक योजना बना कर प्रकाशन योग्य ग्रन्थों का ब्योरा तैयार हो। और उसी प्रकार वे छपें। जिस में व्यर्थ व्यय न हो।

जैन धर्म और संस्कृति के समीचीन ज्ञान के प्रसार के लिए अच्छे ग्रन्थ जो युवकों को भाएँ, अच्छे लगें, ऐसे ग्रन्थों का प्रकाशन प्रथम हो।

श्री अगरचन्द नाहटा, बीकानेर

१. बाल साहित्य का निर्माण एवं प्रकाशन। जैन साहित्य में हज़ारों कथाएँ हैं उन में से बालकोपयोगी कथाओं को उपयुक्त शैली में लिखा कर प्रकाशित किया जाये। नैतिक प्रेरणादायी बातों की भी जैन दर्शन और साहित्य में अधिकता है। उन्हें भी बालकों के हृदय तक पहुँचाने का प्रयत्न किया जाये।

२. जैन धर्म का एक सरोमान्य धार्मिक पाठ्यक्रम नीचे से ले कर ऊपर तक ऊँची कक्षाओं तक बनाया जाये और उसे समस्त जैन विद्यालयों में चालू करवाने का प्रयत्न हो।

३. जैन कथा कोश तैयार करवाया जाये।

४. कन्नड़ और तमिल भाषा में जो जैन साहित्य है उसमें से जो प्राकृत, संस्कृत आदि में नहीं हों ऐसी उन भाषाओं की विशिष्ट रचनाओं का अनुवाद हिन्दी में करवाया जाये।

५. विदेशों में जैन धर्म, दर्शन, साहित्य और कला सम्बन्धी ज्ञान बढ़े और समुचित जैन धर्म का प्रचार हो सके ऐसा साहित्य तैयार करवा कर समस्त विश्वविद्यालयों आदि को सूचित किया जाये और भेजा जाये।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ज्ञान भारिल्ल, बीकानेर

प्राचीन जैन साहित्य कितना गूढ़, कितना मूल्यवान् कितना रसमय है इसे आप जैसे विद्वान् तो जानते ही हैं—आवश्यकता है उस का परिचय आज के पाठकों को देने का। इस के लिए चतुर्मुखी प्रयत्न की आवश्यकता है और वह प्रयत्न काफ़ी अंशों में ज्ञानपीठ कर रहा है। यह प्रस्तावित संगोष्ठी उस दिशा में एक मज़बूत, व्यावहारिक कदम सिद्ध हो ऐसी मैं कामना करता हूँ।

श्री चम्पालाल सिंघई, 'पुरन्दर', अशोकनगर

अनुपलब्ध साहित्य के अनुसन्धान एवं प्रकाशन के अब तक के प्रयत्नों से जितना साहित्य प्रकाश में आया है उस से अधिक अभी ग्रन्थ भण्डारों में अरक्षित अथवा सुरक्षित पड़ा हुआ है। कहीं-कहीं स्थानीय विद्याप्रेमियों के प्रयास से लोहे की सुदृढ़ आलमारियों में ग्रन्थ रखने की व्यवस्था की गयी है और सूचियाँ भी बनायी गयी हैं। आज भी कई ऐसे महत्त्वपूर्ण भण्डार हैं जिन में झाँका भी नहीं जा सका है जैसे राजस्थान में नागौर का भट्टारकीय भण्डार। हाल ही में भ० देवेन्द्रकीर्ति जी का स्वर्गवास हो गया है। उन्हों ने अपना कोई उत्तराधिकारी भी नहीं छोड़ा। उस भण्डार को अधिकार में ले लेना चाहिए। वहाँ दस सहस्र हस्तलिखित ग्रन्थ हैं। सूची बनना चाहिए। महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ प्रकाशित किये जावें।

मन्दिरों और तीर्थ क्षेत्रों में प्रति वर्ष विपुल द्रव्य आता है परन्तु नवीन वेदियाँ या संगमरमर का फर्श लगाने, सोने चाँदी के उपकरण बनाने, मन्दिर के भवनों का विस्तार कर किराया बढ़ाने आदि में उस का उपयोग होता है। प्रत्येक मन्दिर में ऐसा नियम बना दिया जावे कि प्रतिवर्ष इतना रु० पुस्तकें क्रय करने में लगाया जावेगा। जिन मन्दिरों या क्षेत्रों में आय अधिक है वे प्रतिष्ठित प्रकाशनों की पुस्तकों को सुलभ कराने में रु० दें और एक साथ सैकड़ों पुस्तकें मोल ले कर अन्य मन्दिरों एवं पुस्तकालयों में भिजवायें। चित्र निकलवाने और जीवन परिचय प्रकाशित कराने के लिए आतुर श्रद्धालु धनिकों का उपयोग ब्र० शीतलप्रसाद जी ने किया था और जैनमित्र तथा दिगम्बर जैन के ग्राहकों को उपहार ग्रन्थ भेंट

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

करने की प्रथा चलायी थी। अब भी कुछ दातार अपने परिजनों की स्मृति में छोटी या बड़ी पुस्तकें मुद्रित करा के वितरित कराते रहते हैं। गीताप्रेस, गोरखपुर से सुमुद्रित और सुसम्पादित सस्ती पुस्तकें प्रकाशित करने की योजना आरम्भ हुई। ग्रंथ प्रचार का यही सही तरीक़ा है। इस की झलक सोनगढ़ से प्रकाशित साहित्य में मिलती है। यदि दस रु० की पुस्तक क्रय करने में एक रु० लगता है तो उसे सुरक्षित रखना मानवीय स्वभाव है।

अतएव मन्दिरों के द्रव्य का उपयोग कर के और दातारों की मनोवृत्ति को मोड़ कर के महत्त्वपूर्ण पुस्तकें सस्ते दामों में देने की योजना उपयोगी है।

अभी जो पत्र और पत्रिकाएँ प्रकाशित हो रही हैं उन में अधिकांश की ग्राहक संख्या नगण्य है। दातारों से प्रकाशकगण सम्पर्क स्थापित कर के पत्र-पत्रिका का मूल्य बढ़ाने के स्थान पर कम करें और ग्राहकों को कम मूल्य पर पुस्तकें दें तो पत्रों की ग्राहक संख्या भी बढ़े और सत्साहित्य का प्रचार भी हो। जैनसिद्धान्त-भास्कर, अनेकान्त, जैनसन्देश, सन्मतिसन्देश, वीरवाणी इत्यादि के ग्राहकों को आधे या चौथाई मूल्य पर पुस्तकें प्राप्त हों तो इस से इन पत्रों की ग्राहक संख्या भी बढ़े और पुस्तकों का विक्रय भी बढ़े। क्षतिपूर्ति उदार श्रीमान् करते रहें।

डॉ० कैलाशचन्द्र जैन, सहारनपुर

यह एक निर्विवाद सत्य है कि जैन साहित्य अभी तक पर्याप्त मात्रा में अप्रकाशित है। उस के प्रकाशन की दिशा में सक्रिय प्रयत्न होने चाहिए। इस के लिए सार्वजनिक रूप से ध्रौव्य फण्ड बनाया जा सकता है। सभी व्यक्ति इस पुण्य साहित्यिक कार्य में आर्थिक सहयोग यथाशक्ति रूप से दे सकते हैं। यदि उत्साहपूर्वक इस दिशा में कार्य किया जाये तो यह नवनिर्मित संस्था 'कल्याण' गोरखपुर का रूप भी ले सकती है। यह अवश्य है कि इस कार्य को सम्पन्न करने के लिए निस्पृह एवं कर्मठ कार्यकर्ताओं की आवश्यकता है। यह संस्था ही आगे चल कर सब विषयों की एक सूची भी निर्माण कर सकती है जिन पर शोध-कार्य हो रहा है या जिन पर शोध-कार्य हो चुका है। शोधार्थियों को भी साहित्यिक ग्रन्थों के अन्वेषण के लिए जगह-जगह भटकना नहीं पड़ेगा। हो सकता है कि यह विनम्र सम्मति प्रारम्भ में खम्भा ढकेलने के लिए बालप्रयत्न सदृश

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अथवा चन्द्रमा को छूने के लिए बौने के प्रयास जैसी प्रतीत होवे किन्तु यदि हृदय में साहस एवं निष्ठा सँजोकर कुछ विद्वज्जन इस दिशा में प्रयत्नशील होवें तो सारी कठिनाइयाँ हल हो सकती हैं।

पं० दयाचन्द्र साहित्याचार्य, सागर

१. जैन साहित्य के अनुपलब्ध ग्रन्थों का पुनः संकलन किया जाये। इस के लिए भारत के प्राचीन शास्त्र भण्डारों और पुस्तकालयों से प्राचीन ग्रन्थों का अन्वेषण किया जाये और सुयोग्य विद्वानों-द्वारा उन के आधार पर संकलन किया जाये।

२. जैन समाज के विद्वानों की आर्थिक स्थिति प्रायः अच्छी नहीं है, इस कारण वे ट्यूशन आदि कार्यों में अपना सब समय खो कर आर्थिक समस्या का हल कर लेते हैं। यदि उन की आर्थिक दशा अच्छी हो जाये, तो वे प्राइवेट कार्य छोड़ कर अपना समय साहित्य के सम्पादन में लगा सकते हैं। उन सुयोग्य विद्वानों को इस ओर आकर्षित किया जाये।

३. अनेकों वरिष्ठ विद्वान् साहित्य के सम्पादन-शोधादि के प्रति उदासीन हैं, उन की उदासीनता दूर करने का समीचीन प्रयत्न किया जाये।

४ जो वरिष्ठ विद्वान् व्यापार आदि कार्य करते हैं उन को साहित्य सम्पादन आदि के लिए प्रेरित किया जाये।

५. जैन समाज में निश्चय-व्यवहार, उपादान-निमित्त तथा तीर्थक्षेत्र आदि के आधारपर तीव्र द्वेषपूर्ण मतभेद बढ़ता जा रहा है जिससे द्रव्य, समय एवं शक्ति का अपव्यय होता है। यदि यह मतभेद दूर करने का प्रबल प्रयत्न किया जाये तो वह द्रव्य-समय एवं शक्ति साहित्य प्रकाशन आदि में प्रवृत्त हो सकती है जिस से साहित्य का तीव्रगति से विकास हो सकता है।

६. जैन समाज में जो कुछ महाविद्यालय हैं उन के पुस्तकालयों में अच्छे वेतन पर सुयोग्य एक-एक विद्वान् रखा जाये, जो साहित्य सम्पादन आदि भी करे, उसे पढ़ाई का भार न दिया जाय। इस विषय में उचित प्रयास किया जा सकता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

७. प्रत्येक महाविद्यालय में बुद्धिमान् परिश्रमी दो छात्रों को उचित छात्रवृत्ति दे कर सर्वांग शिक्षित बनाया जाये, जो डॉक्टर ऑफ़ लिटरेचर एवं पी-एच० डी० की श्रेणी पर आरूढ़ हो कर अच्छे वक्ता और लेखक सिद्ध हो सकें। ऐसे विद्वानों से साहित्य का विकास होना स्वाभाविक है।

८. वर्तमान में जो विद्वान् पूर्ण शिक्षित नहीं हैं यदि वे यथायोग्य पूर्ण शिक्षा प्राप्त करना चाहें तो उन को जैन संस्थाओं में सुविधा प्रदान की जाये।

९. समर्थ जैन मन्दिरों एवं समर्थ तीर्थक्षेत्रों की ओर से प्रतिवर्षद्वय में अथवा १-१ वर्ष में जैन साहित्य का एक-एक ग्रन्थ प्रकाशित कराया जाये। इस प्रकार की एक योजना बनायी जाये।

१०. शोध-संस्थान अथवा प्रकाशन संस्थाएँ भारत के समर्थ सकल विश्वविद्यालयों से सम्पर्क स्थापित करें।

११. जिस वर्ष जो विद्वान् जैनदर्शन के किसी भी विषय पर रिसर्च (शोध) करें, उन की सूची ट्रेक्ट के रूप में अथवा पत्रों में प्रकाशित की जाये।

१२. प्रत्येक समर्थ जैन मन्दिर एवं तीर्थक्षेत्रों में विशाल ग्रन्थागार स्थापित हों जिस से कि रिसर्च करने वालों को जैन ग्रन्थों या अन्य ग्रन्थों के यथायोग्य प्राप्त करने की शीघ्र सुविधा प्राप्त हो सके।

१३. भारत में जहाँ-जहाँ पंचकल्याणक हों वहाँ की कल्याणक समिति से यह अनुरोध किया जाये कि वह जैन साहित्य का एक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ प्रकाशित या सम्पादित अवश्य करावे।

१४. शोध-संस्थान, पब्लिशिंग हाउस एवं अन्य प्रकाशन संस्थाओं और ज्ञानपीठ आदि साहित्यिक संस्थाओं का एक संगठन होना अत्यावश्यक है। इस से साहित्य विकास की अनेक समस्याओं का समाधान प्राप्त हो सकता है।

१५. जैन साहित्य के विकास में, जैनधर्म के ज्ञाता जैनेतर विद्वानों तथा जैनेतर संस्थाओं का सहयोग यथायोग्य प्राप्त करना आवश्यक है।

१६. साहित्यनिर्माता को पूर्ण पारिश्रमिक देना आवश्यक है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

डॉ० प्रद्युम्नकुमार जैन टिहरी, गढ़वाल

वर्तमान परिस्थितियों को देखते हुए यह बहुत आवश्यक है, कि जैनोलॉजी पर प्राचीन ग्रन्थों के सम्पादन के साथ-साथ आधुनिक ग्रन्थों एवं शोध-प्रबन्धों का प्रकाशन अवश्य किया जाये।

जैन साहित्य संगोष्ठी के आयोजन के लिए मेरी कोटिशः बधाई और सफलता हेतु शुभ कामनाएँ।

डॉ० (श्रीमती) रत्ना श्रीयन्, बेंगलोर

जैन साहित्य के अप्रकाशित ग्रन्थों का सम्पादन तथा प्रकाशन अत्यावश्यक है। जैन साहित्य के हर एक विद्वान् को अपना कर्तव्य समझ कर धन या लाभ की अपेक्षा न करते हुए सुसम्पादन के काम में लगना चाहिए।

डॉ० वशिष्ठनारायण सिन्हा, वाराणसी

जैन वाङ्मय और संस्कृति के विकास में लगे हुए विद्वानों को अपने विचार व्यक्त करते समय अपने को मात्र एक विचारक के रूप में ही देखना चाहिए, ऐसा नहीं कि वे जैन हैं अथवा अजैन, दिगम्बर हैं अथवा श्वेताम्बर, स्थानकवासी हैं अथवा तेरहपन्थी। साथ ही देश और काल के अनुसार इसके सिद्धान्तों के अपवाद भी बनने चाहिए क्योंकि किसी भी धर्म का विस्तार तब तक नहीं हो सकता जब तक कि उसमें अन्य स्थान एवं वातावरण में प्रवेश पाने की क्षमता अथवा अनुकूलता न हो। हाँ इतना तो ध्यान रखना ही चाहिए कि इस की मौलिकता पर भी कोई आँच न आये।

पं० माणिकचन्द्र जैन, सागर

जैन साहित्य संगोष्ठी का आयोजन विवरण मिला। सफलता के लिए हार्दिक शुभ कामना स्वीकार करें। आप की स्मारिका की योजना सराहनीय है।

श्री रिषभदास रांका, बम्बई

साहित्य संगोष्ठी में जिन महत्त्वपूर्ण विषयों पर चर्चा करने के सुझाव दिये गये हैं वे अत्यन्त विचारणीय हैं। सच बात तो यह है कि जैन समाज में जैन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

साहित्य पर विभिन्न संस्थाओं के द्वारा काफ़ी काम हो रहा है पर सारे जैन समाज में होनेवाले कार्यों की जानकारी न होने से एक ही तरह के काम कई स्थानों से होते हैं। यदि जैन साहित्य में दिलचस्पी लेनेवाले सभी लोग योजना-पूर्वक कार्य करें, तो शक्ति और साधनों का ठीक उपयोग हो सके। आज विभिन्न सम्प्रदायों तथा संस्थाओं में चलनेवाले काम में समन्वय की अत्यन्त आवश्यकता है। यदि आप, सभी साहित्य सम्बन्धी चलनेवाली प्रवृत्तियों में सम्पर्क हो, ऐसा कोई प्रयत्न करें तो समाज के लिए अत्यन्त उपयोगी होगा और लाभप्रद भी।

दक्षिण में धारवाड़ तथा मैसूर विश्वविद्यालय ने जैन चेअर की स्थापना कर जैन साहित्य के प्रकाशन के लिए काफ़ी धनराशि भी सुरक्षित रखी है पर बहुत कम लोगों को इस बात की जानकारी है और न उस सुविधा का उचित लाभ ही उठाया जाता है।

आशा है कि इस संगोष्ठी में इन सब विषयों पर चिन्तन होकर कोई ऐसा प्रयत्न होगा कि जिस से पूरे जैन समाज की शक्ति और साधनों का योजना पूर्वक उपयोग हो।

प्रो० उदयचन्द्र जैन, वाराणसी

वाराणसी में होने वाले अखिल भारतीय प्राच्य विद्या सम्मेलन के अवसर पर जैन साहित्य संगोष्ठी और जैन साहित्य प्रदर्शनी का आयोजन एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण और प्रशंसनीय कार्य है। संगोष्ठी में चर्चनीय विषयों की जो सामान्य रूपरेखा प्रस्तुत की गयी है उस में जैन साहित्य से सम्बन्धित प्रायः सभी समस्याओं का समावेश है। यदि संगोष्ठी में उन समस्याओं पर गम्भीरता से चर्चा की जाये और उन के समाधान के लिए कुछ उपाय या मार्ग खोज लिये जायें तो यह एक बहुत बड़ा कार्य होगा। अनुपलब्ध प्राचीन ग्रन्थों का पुनराकलन, अप्रकाशित ग्रन्थों का प्रकाशन, प्रकाशित किन्तु अप्राप्य ग्रन्थों का पुनः प्रकाशन, आदि कुछ ऐसे महत्त्वपूर्ण विषय हैं जिन पर तुरन्त ध्यान देने की आवश्यकता है। यदि यह संगोष्ठी कुछ ही समस्याओं के समाधान करने में सफल होती है तो यह उसकी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सब से बड़ी सफलता होगी। मैं संगोष्ठी को सफलता की कामना के साथ संगोष्ठी के आयोजकों को धन्यवाद देता हूँ।

प्रो० गोपीलाल अमर, सागर

इस गोष्ठी में विचारार्थ विषयों में यह भी हो सकता है कि 'उदीयमान प्रतिभाओं को चाहे वे किसी भी क्षेत्र में रहें, साहित्य के क्षेत्र से सविशेष संलग्न बनाने पर विचार' किया जाये।

प्रकाश भारिल्ल हितैषी, दिल्ली

सुरुचिपूर्ण सुन्दर जैन साहित्य के प्रचार-प्रसार के विषय में विचार-विनिमय करने के लिए जैन समाज में आयोजित इस प्रथम गोष्ठी का मैं हृदय से स्वागत करता हूँ। संस्था की यह सूझ-बूझ एवं महत्त्वपूर्ण आयोजन अभिनन्दनीय है।

पं० हीरालाल शास्त्री, ब्यावर

मेरी राय में आप ने जिन बातों की चर्चा का सुझाव गोष्ठी के लिए दिया है, वे सभी उपयुक्त हैं। आज अप्रकाशित जैन साहित्य के प्रकाशन की जितनी आवश्यकता है, ठीक उतनी ही आवश्यकता उस के विक्रय की है। इस के लिए सरल उपाय यही है कि जहाँ पर १५ घर भी जैन समाज के हों और जिनमन्दिर हो, वहाँ के मन्दिर को प्रकाशित साहित्य खरीदने के लिए ग्राहक बनाया जाये। यदि इस प्रकार ७–८ सौ भी मन्दिर ग्राहक बन जाते हैं, तो प्रकाशित साहित्य सरलता से बिक सकेगा। हाँ, जैन-मन्दिरों को ग्राहक बनाने के लिए विद्वानों को प्रयत्न करना होगा और ज्ञानपीठ को एक-दो योग्य प्रचारक रख कर ग्राहक बनाना होगा।

डॉ० गुलाबचन्द्र चौधरी, नवनालन्दा महाविहार

१. जैन साहित्य के जिन प्राचीन ग्रन्थों के सन्दर्भ और उल्लेख ग्रन्थान्तरों में मिलते हैं, पर मूल अनुपलब्ध हैं, उन का पुनराकलन अवश्य किया जाये और उन का Fragments from Dignag (G. O. S.) के नमूने पर प्रकाशन किया जाय और उत्तरोत्तर प्रयत्नों द्वारा रिक्त स्थानों की पूर्ति की जाये। यह अनुपलब्ध जैन साहित्य के उद्धार का स्तुत्य प्रयत्न होगा।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

२. जैन साहित्य के प्रति धनी-मानी प्रकाशकों को चाहिए कि वे निरन्तर प्रेरणा दे कर विद्वानों की मन्थर गति में प्रगति लावें। वेतनभोगी विद्वान् प्रायः आलसी हो रहे हैं। इस विषय में स्व० पं० नाथूराम प्रेमी का आदर्श सामने रखना चाहिए। वृद्धावस्था के अन्तिम दिनों में भी उन्हों ने आठ-आठ दिन में पत्र लिख, निरन्तर प्रेरणा दे हम से जैनशिलालेख-संग्रह की बृहद्भूमिका लिखवायी थी।

उत्साही प्रेरक प्रकाशकों और माने हुए विद्वानों की एक समिति बना कर इस विषय में प्रेरणा-सूत्र की रूपरेखा का निर्धारण होना चाहिए।

३–४. जैन साहित्य के अधिक से अधिक आलोचनात्मक संस्करण निकलना चाहिए और जहाँ तक हो सके उन में से कुछ चुने ग्रन्थों के अँगरेज़ी संस्करण या gist तैयार कराने चाहिए। जिस से विदेशों में भी उन का उपयोग हो सके। इधर जापानी प्राच्यविद्यानुरागी विद्वानों में जैन-न्याय-दर्शन पढ़ने की ओर विशेष झुकाव है पर जैन-न्याय-दर्शन के अच्छे अँगरेज़ी संस्करण न होने से उन्हें कठिनाई हो रही है।

५. जैनों के संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश तथा देशी भाषाओं के साहित्य में अनेक पारिभाषिक शब्द हैं, जिन्हें हम प्रकाशित कोशों, इन्साइक्लोपीडिया आदि में नहीं पाते और पाते भी हैं तो उन का विपरीत या भ्रान्त अर्थ दिया गया है। हमें भाषागत—संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश-कोशों की अत्यन्त आवश्यकता है। जैन इन्साइक्लोपीडिया की भी बड़ी आवश्यकता है, उस का संकलन विभिन्न विद्वानों की सहायता से शीघ्र प्रारम्भ होना चाहिए। लंका सरकार ने डॉ० मलालशेखर के प्रधान सम्पादकत्व में (इन्साइक्लोपीडिया ऑफ़ बुद्धिज्म) प्रकाशित करना प्रारम्भ किया है। उस के अब तक ४ गुच्छक निकल चुके हैं। डॉ० मलालशेखर ने ही 'डिक्शनरी ऑफ़ पालि प्रापर नेम' नाम से वर्षों पहले एक कोश दो भागों में प्रकाशित कराया था। जैन विद्वानों और संस्थानों मे इस प्रकार के कोश प्रकाशन की उत्सुकता दिखाई देती है पर प्रयत्न को सक्रिय होने में उद्यम कम है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

६. (क) शोध प्रबन्धों को पठनीय पुस्तक के रूप में या यदि वे reference मात्र के लिए लिखी गयी हों तो उस रूप में शोघ्र प्रकाशित करा देना चाहिए। गवेषक विद्वान् इस सम्बन्ध में अपने क्षेत्र के मन्दिर या तीर्थ क्षेत्र के द्रव्य से उस के प्रकाशन का प्रबन्ध करा सकें तो अच्छा। कोई उदार समाजसेवी इस कार्य में आगे आवें तो अच्छा। उसे दीर्घकाल तक अप्रकाशित रखना ठीक नहीं।

(ख) हमारे शिक्षण का स्तर गिरने के कारण यह सब हो रहा है। अधिकांशतया जीविकोपार्जन के लिए येन केन प्रकारेण डिग्री उपलब्ध करने-कराने की कोशिश हो रही है पर यदि थोड़ी जागरूकता और परिश्रम रहे तो सोने में सुगन्धि आ सकती है। फिर भी लघुस्तर के शोध प्रबन्ध को कमियाँ संशोधन-परिवर्धन-द्वारा दूर की जा सकती हैं और इस के लिए एक विशेषज्ञों की समिति से सुझाव ले कर यह कार्य होना चाहिए।

(ग) शोधकार्य में विषय की पुनरावृत्ति खूब हो रही है। समय-समय पर विषयों की सूची प्रकाशित होनी चाहिए तथा उसे अलग से सभी शोध संस्थानों और विश्वविद्यालयों में जानकारी के लिए भेजना चाहिए।

(घ) यह प्रायः शोधकर्ता की रुचि के कारण होता है। पथ प्रदर्शन द्वारा रुचि का परिवर्तन किया जा सकता है। इस विषय में शोधकर्ताओं को लाने के लिए छात्रवृत्ति आदि का प्रबन्ध करना चाहिए। श्री पार्श्वनाथ विद्याश्रम का योगदान इस कार्य में अनुकरणीय है।

(ङ) जैन साहित्य पर अनुसन्धान करने में रुचि लेने वालों की अब कमी नहीं है, पर Co-ordinated work का अभाव है। इस लिए पुनरावृत्ति या घटिया स्तर हो रहा है। कुछ पथप्रदर्शक (Guide) और शोधछात्र अपने शोधकार्यों में अतिगोपनीयता बर्तते हैं जिस का परिणाम घातक हो रहा है। शोध के विषय को बहुपरामर्श द्वारा सर्वांग सुन्दर बनाना चाहिए, अन्यथा उस से संकीर्णता और लघुस्तर होगा ही।

७. यह तो वस्तुस्थिति है। इस समस्या का समाधान सुलभ नहीं है। वस्तुस्थिति का सामना कर के तो चलना ही होगा। पीछे तो हटना नहीं है, और न निरुत्साहित होना है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

८. जैन समाज के प्रत्येक केन्द्रों में, मन्दिरों, विद्यालयों तथा धर्मादा आदि के रूप में प्रचुर मात्रा में धन-द्रव्य संग्रहीत है। उन सब से समय की माँग बतलाकर थोड़ी-थोड़ी राशि ले कर एक केन्द्रीय प्रकाशन संस्था बनायी जाये और इस से साहित्य प्रकाशन में गति लायी जाये। जिस तरह जैन तीर्थक्षेत्रों से प्रचारक दान लेने के लिए जाते हैं उसी तरह इस प्रकाशन तीर्थक्षेत्र के लिए भी प्रयत्न होना चाहिए। दान देने वाले चाहें तो, उन के धन से प्रकाशन के लिए, आभार प्रदर्शन किया जा सकता है।

९. प्रकाशकगण इस विषय में विशेष सोचें। हमारे विचार से यही होना चाहिए कि साहित्य अति महँगा न हो और खरीददार की मर्यादा के अनुरूप सुलभ रहे और उस में जो घाटा लगे, उस की पूर्ति धनिक समाज के उदार दान से की जाये।

१०. इस बात से हम पूर्ण सहमत हैं। इस में दो मत नहीं होना चाहिए।

११. प्रत्येक जैन को चाहिए कि वह यह व्रत ले कि उस के घर में या मुहल्ले तथा ग्राम में एक ग्रन्थों से भरी स्वाध्यायशाला, ग्रन्थागार हो जिस में शक्ति के अनुसार २००-२५० से कम पुस्तकें न हों। इस से प्रकाशनों का विक्रय बढ़ेगा और पुराने संस्करणों की समाधि पर नवसम्पादित ग्रन्थ प्रकाशित हो सकेंगे।

डॉ० के ऋषभचन्द्र, अहमदाबाद

१. प्राकृत और जैन वाङ्मय के अध्ययन का शुभारंभ हम अपने घर से करें अर्थात् सर्वप्रथम कम-से कम हम अपने प्रत्येक जैन स्कूल, कालेज और संस्थाओं में प्राकृत और जैन वाङ्मय के अध्ययन के लिए स्वतन्त्र विभागों की अविलम्ब स्थापना करें और सम्बन्धित विश्वविद्यालय को बाध्य कर दें कि वह इसके लिए स्वतन्त्र बोर्ड ऑव स्टडीज़ बनाये तथा परीक्षा आदि का प्रबन्ध करे। मेरी समझ से भारत में शायद ही ऐसा कोई विश्वविद्यालय हो जिस से सम्बन्धित कुछेक जैन कालिज आदि न हों। यदि उनमें प्राकृत और जैन वाङ्मय का अध्ययन प्रारम्भ कर दिया गया तो निःसन्देह इस से सम्बन्धित सभी समस्याओं का समाधान हो सकेगा।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

२. एक बड़ी आवश्यकता केन्द्रीय संस्थान की है, जिस में जैन वाङ्मय के विशिष्ट विद्वान् स्वयं कार्य करें और उनके निर्देशन में अन्य विद्वान् भी। संस्कृत कमीशन की सिफ़ारिशों में प्राकृत को प्रोत्साहन देने के भी सुझाव हैं। इस पर कितना अमल किया गया या हो सकता है, यह भी देख लेना चाहिए और सिफ़ारिशों का लाभ लेना चाहिए।

पं० बंशीधर शास्त्री, कलकत्ता

शोध प्रवन्ध और उनके प्रकाशन से सम्वन्धित जो मूलभूत प्रश्न हैं, वे सब लगभग प्रत्यक्ष हैं। मेरी समझ से इसका एक मात्र समाधान एक ऐसे केन्द्रीय संस्थान की स्थापना है जो शोध-कर्ता को विषय के चुनाव से लेकर प्रवन्ध की प्रस्तुति और प्रकाशन तक में मार्गदर्शन और सहयोग करे।

शोध प्रवन्धों के प्रकाशन के विषय में मेरा एक यह भी सुझाव है कि प्रवन्ध स्वीकृत होने के वाद कम से कम उसका परिचयात्मक सार अविलम्व प्रकाशित कर देना चाहिए। दस से बीस पृष्ठों तक में यह सामग्री पत्रिकाओं में दी जा सकती हैं।

विक्रय के विषय में मेरा अभिमत है कि मन्दिरों, संस्थाओं आदि को कम से कम पाँच सौ स्थायी ग्राहक बनाना चाहिए।

R.C. Jain, Sri Ganganagar (Rajasthan)

This bulletin misses the most important matter that is the heart of the whole purpose. Jaina Sāhītya centres and should centre round Śramaṇism. We should bring out the basic fundamentals of the pre-Āryan Śramaṇism, the post-Āryan Śramaṇism, its coalescences and assimililations with the foreign-imported materialism from a chronological, dialectical and historical perspective with the organic critical method.

The Indus Valley culture is basically Śramaṇic in content and character. The apathy of the Jain scholars and financiers

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

to the pre-historic Śramaṇism deluded Marshall to christen it pre-Āryan, non-Āryan proto-Śaivism which it is definitely not. I want to urge upon all the scholars and financiers assesmbling at the Saṁgoṣṭhi to give their most serious thought to this aspect of researches. I am convinced that archaeology, anthropology, geography, geology and some more physical sciences are our best friends.

The Saṁgoṣṭhi should seriously consider the following types of researches :—

(a) A through re-investigation of the Indus Valley culture and civilization.

(b) Rewriting of Bhāratīya history depicting dialectical development of the original Bhāratīya culture and civilization through various historical epochs.

(c) Jainism (or Śramaṇism) through ages since C.4000 B.C. to date.

(d) Cultural researches of the Jaina Āgamas and other scriptural literature bringing out distinct cultures and civilizations of various periods of the Bhāratīya society.

(e) Āgamā Word concordance and Āgama Indices should receive first priorities.

The whole Jaina community and others do expect some big achievements from us. We should scientifically plan our researches and efficiently execute them.

Mere bringing out the unknown or the unedited works would not accomplish much. That should have been done

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

long long ago. We must now relate our historical and critical researches with the ever-flowing age-current of the Bhāratīya society. I do expect this Saṁgoṣṭhī to rise up sufficiently high to take very bold decisions and create a suitable machinery for their implementation. I humbly suggest to the learned Assembly that a Central Board of Śramaṇic Researches be created. It should scientifically plan the subjects of researches to be taken up by research scholars, Ph. D and D. Litt students. The present state of researches is hopelessly chaotic and confusing. Small subjects are taken up for job-hunting purposes and some big aspects remain neglected throughout. We have no concordances, Indices Dictionaries etc. No historical and critical studies of the Jaina Purāṇas have been undertaken. Only a few Āgamas are fortunate to have critical texts and none have so far yielded cultural materials. The Central Board should have three constituent Boards as under :

1. Board of Pre-Historic Studies.
2. Board of Word Studies.
3. Board of Critical Texts and Cultural Studies.

Our Institute would, if entrusted, take upon itself the organisation of the Board of Pre-historic Studies. I will enlist cooperation of Jaina and non-Jaina scholars, expert in these studies.

Prof. M. S. RANADIVE, Satara.

We have to encourage the students to study Prakrit by offering scholarships. In additon we have to make arrangements for their service.

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

In Maharashtra, the medium is Marathi. In Marathi the Jaina Literature is very little. We have to encourage the scholars to do this work. As there are few students offering Ardhamāgadhī one cannot publish Prakrit books without grants. Or we have to do some arrangements to publish such books. We have to do urgently something to introduce Prakrit in various Universities and colleges.

Dr. J. C. SIKDAR, Ahmedabad.

I am sorry that I shall not be able to join you in the deliberation of your proposed conference of Jaina Sahitya Samgoshthi. Any way I fully concur with your views regarding the plan for Jaina Literary development in the field of Indian Culture. It is known to us all that the study of Prakrit and Jainology is the most neglected one in Indian Universities in general. Our effort should be directed to bring to light the scientific, cultural and practical value of the study of Prakrit and Jainology before the people of the country. You may approach the government and the Universities. But I have bad experiences about them. I know that in one (Central Govt.'s) university, the post of a lecturer was created for Jaina studies, but the post has been filled up by a candidate who does not know A, B, C, D of Jainism and Prakrit.

Prof. B. K. KHADABAD, Dharwar (Mysore)

Your efforts towards organizing the Samgosthi so as to coincide with the 24th. Oriental Conference are laudable. Unfortunately I cannot attend it. I however sincerely hope that it would help to give further impetus to the study of

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Prakrit and Jainism in colleges and universities in India.
Prof. R. V. DIXIT, Gadag, (Mysore)

The following points should be stressed at the जैन-साहित्य-संगोष्ठी ।

1. A uniform, critical edition of the श्वेताम्बर Canon-This is absolutely necessaly.

2. Steps to organise publication of many important unpublished works.

3 Steps to popularise Jain literature-especially found in Apabhraṁśa and Prākrit languages-amongst the esses in their regional languages.

4 Steps to establish Departments of Prakrit and Jain studies at various universities. Much of the Jain literature consists in Prākrit languages and very few universities provide the proper facilities for Prakrit studies in a systematic way

5. Publications of some of the important texts-now not available.

[पृष्ठ ४ का शेषांश]

Even original Prākrit passages are read only through the Sanskrit chāyā. This has often resulted into gross misunderstanding of the original texts. There was a time when Sanskrit and Prākrit were studied side by side, but unfortunately this method has been given up; and some of our scholars do not feel that there is any harm in studying the Prākrit text through the Sanskrit chāyā. Just as we do not study the Vedic Sūktas by rendering, them into classical Sanskrit, we should not, correctly speaking, render the Prakrit and Apabhraṁśa texts into Sanskrit and then try to

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

understand them. Any way this method has its defects, and earlier we mend it the better for our studies.

Unless the Prākrit and Apabhraṁśa languages and literature are thoroughly and properly studied, it is wellnigh impossible to understand the history and growth of New IndoAryan languages. I can only quote what Sir Ralf Turner has written to me in this connection :

"I should like to say how very glad I am to learn that greater attention is to be turned to Prākrit studies in India, in which, of course, my own studies in the history of the New Indo-Aryan languages has given me a special interest. There is a tremendous lot about their history to be got from a study of Prākrit, which will be a most fruitful field for very many years."

The question then before us is : Are we going to neglect this fruitful field and do tremendous harm to our studies of Modern Indian languages ? We are all out and earnest to enrich them in our national interest; obviously their history and growth have to be studied; and this is not possible without a thorough study of Prākrits and Apabhraṁśa.

As yet we do not have a critical edition of the entire Ardhamāgadhī canon and of the Prākrit texts associated with it as commentaries etc., though excellent Ms. material available in our country. Our European colleagues have already led the way in this direction; and it is for us not only to follow them but also try to do something better, because the material is easily available here. Secondly, the

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

texts like the Ṣaṭkhaṇḍāgama have been published, but a good deal of study is yet to be carried on their contents. The publication of an important text should be the beginning for a critical study of its contents along with other corelated works. Rather than wasting our time and energy on trifling controversies, it is necessary that real problems connected with these great works are tackled. Lastly, still many important Apabhraṁśa works are to be critically edited and published. Some of them contain rich linguistic material which in later works like those of Raidhu, runs more less parallel with the growth of our New Indo-Aryan languages like the Bṛja etc.

Still we lack in Bibliographies, Glossaries, Topical Indices, Statistical data, specialised monographs etc. without which any progress of studies is nearly impossible. In their absence, much of our writing lapses into repetitions and wild speculations.

It is high time that some of these studies are carried on in our Universities and Research Centres. They can never be confined to any religious folds or regional compartments. If our universities fail to realise the all-India importance of these studies, it is something unfortunate. I, for one, hope that the day is not far off when the scholars of cosmopolitan outlook will soon appreciate the importance of Jainological and Prākrit studies and give them their due place in the scheme of Indological learning.

■ ■

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्राकृत सेमिनार के निष्कर्ष

(I) Teaching of Prakrits :

(a) Prakrits should be understood in a wider sense so as to include all the Middle Indo-Aryan languages and their teachings should be carried on in close relation to Sanskrit and Modern Indian languages. They are essentially humanitarian studies and have to form a part and parcel of the classical studies and should have close ties with linguistic and cultural subjects.

(b) In the Pre-University stage, their study can be only optional, but at the same time their contents should be enriched and a higher standard of attainment should be expected from those who offer them.

(c) In the University stage, there should be two types of courses, one of a more general nature to be combined with either the other Classical Languages or the Modern Indian language, and the second of a more specialised nature, to form a subject of study by itself.

(d) At the Post-Graduate level, the subject can be usefully studied as a specialised course leading to research in the field. This would be done by having a full Prakrit course for the Post-Graduate degree and for the Doctorate degree,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

as without such specialised study, the culturally useful aspects of this subject cannot be brought out.

(II) Research in Prakrits and preservation of Prakrit Literature.

To preserve and make the proper use of the vast cultural and literary material found in the Prakrits, it is urgently necessary to undertake a number of research projects and similar activities of collection, preservation and publication of Prakrit works. To this end, the Seminar strongly urges on the academic institutions of the country to undertake the following essential research projects in the field.

(i) A History of Prakrit Literature.

(ii) A Middle Indo-Aryan Dictionary.

(iii) Historical Grammars of Prakrit dialects on an uniform plan.

(iv) An encyclopaedia of Prakrits and Jainology.

(v) Monographs on important cultural aspects prominently represented in Prakrit Literature.

(vi) Preparation of a comprehensive Bibliography of Prakrit and Jainological studies.

To meet the other need of these studies every effort will have to be made to carry on the following types of work by competent authorities :

(1) A new survey of Prakrit Mss scattered all over the country, their cataloguing and classification.

(2) Building up one or two centres for the collection of rare and valuable Mss. either in the original or by means of mechanical duplication.

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(3) Building up a museum of antiquities connectied with these studies.

It is essential for the proper preservation of all such material that some central Institution be established where they can be collected and scientifically preserved. Such a place should have the necessary equipment of microfilming and photostat copying, microfilm readers which will make available to the interested scholars the material along with the loaning of the original documents. At the initial stage, a wing in the central Library may be set aside and developed for this purpose.

It is obvious that unless proper and adequate arrangements are made to have this valuable material properly edited and published, their usefulness cannot be realised. As very little Prakrit Literature is published so far and that also often in an indifferent manner, gratest emphasis must be laid on the editing and publication of the most important works in the field. The Seminar suggests that the following works need immediate attention :

(1) A uniform and critical edition of the Jaina canon of both the major sects of Jainism. In view of the cultural and religious value of these works and their wider appeal, it is thought desirable that this edition contain both the text and a translation on the model of Loeb Classical Library.

(2) Publication of many important Apabhramsa works which are yet lying hidden in Mss.collections.

(3) Publication of more important exegetical works in Prakrit like the Curnis and Bhasyas etc.

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(4) The more important literary works in Prakrit.

(III) Promotion of Prakrit Studies in the Universities :

(1) It is important to set up full fledged departments of Prakrit Studies specialising in one or more aspects, in a couple of Universities which may be found suitable for this pupose; and setting up of at least one Centre of Advanced Studies in Prakrit, to undertake and co-ordinate research work in this field.

(2) Departments of Sanskrit and / or Pali in some Universities may be strengthened by the addition of at least a Prakrit scholar of the status of a Reader who can help to integrate these studies with the other classical languages, besides teaching the subject.

(3) In view of the subject being neglected so far and the difficulties of getting suitable persons to work in it, it is essential that help by way of scholarships at the M. A. level and Junior and Senior fellowship at the Doctorate level shoud be made available to a number of University Centres.

(4) Research grants to competent and interested teachers of the subject in the colleges and the Universities should be made available to undertake the work of editing and publishing important Prakrit works, preparing monographs on various aspects of the Prakrit Language and Literature and other studies.

(5) The Seminar strongly felt that an attempt must be made to make the general public realise the value and importance of the Prakrit Studies. This can best be achieved by

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

means of making arrangements for delivering courses of lectures on its important aspects and holding of seminars at different places on different occasions. In view of the growing importance of the Modern Indian languages, works of more general appeal should be translated into them and made available at a low cost.

(IV) To put these suggestions in practice the following procedure is indicated :

(a) The Universities and Research Institutes and Academic Societies should be approached to ascertain which of the above works they can undertake; and they should be provided with the necessary financial assistance for it.

(b) Prizes at the National and State level should be given to outstanding works in this field; of the nature of a critical edition, dissertation or research monographs.

(c) A request should be made to the U. P. S. C. and the P. S. Cs of different States to include the Prakrit language as one of the subjects for the competitive examinations along with other classical languages.

(d) The Seminar suggests that a small committee of Prakrit scholars be set up to work out the details of the various projects suggested for being undertaken.

■ ■

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जैन वाङ्मय के अध्येता और अनुसन्धित्सु

जैन वाङ्मय पर शोध कार्य करने वालों के समक्ष जो विशेष कठिनाइयाँ आती हैं, उन में से एक यह भी है कि सब को प्राय: यह जानकारी उपलब्ध नहीं है कि किस-किस विषय के वरिष्ठ विद्वान् कहाँ-कहाँ हैं, जिस से उन विषयों पर कार्य करने वाले अनुसन्धित्सु उन विद्वानों से सम्पर्क कर के निर्देश प्राप्त कर सकें। यह सूची जैन वाङ्मय के उन अध्येता और अनुसन्धाताओं की है जो वर्तमान में सक्रिय रूप से कार्य में संलग्न हैं। जिन विद्वानों और अनुसन्धित्सुओं के नाम—पते आदि शोध-अनुसन्धान कार्य के अन्तर्गत आ चुके हैं, उन्हें यहाँ दोबारा नहीं दिया गया है। हम चाहते थे कि विद्वानों और अनुसन्धित्सुओं का संक्षिप्त परिचय भी दिया जाये, जिस से शोध उपलब्धियों और कार्य की विभिन्न दिशाओं की और अधिक जानकारी मिले। हमारे अनुरोधपर कुछ विद्वानों ने परिचय भेज दिये हैं, किन्तु बहुत से परिचय प्राप्त नहीं हुए। सम्भवतया कुछ विद्वान् इस कार्य को बहुत ही नगण्य समझते हैं। एक विद्वान् ने तो यहाँ तक लिखा कि "मैं अपना परिचय स्वयं क्या लिखूँ, किसी और से लिखा लें। मैं ने कोई आज तो कार्य शुरू किया नहीं है।" इत्यादि।

जिस तरह प्राचीन आचार्यों, विद्वानों आदि के समय, साहित्य और स्थान आदि के विषय में आज खोजबीन करनी पड़ती है और कभी-कभी तरह-तरह की अटकलबाज़ियाँ भी लगायी जाती हैं, सम्भव है उसी तरह आज के विद्वानों के परिचयादि के लिए आगे की पीढ़ियों को प्रयत्न करना पड़े। ऐतिहासिकता के प्रति इस चेतना का अनुभव नितान्त आवश्यक है। उपलब्ध सामग्री के आधार पर यहाँ परिचय—संकेत मात्र प्रस्तुत है। सम्भव हुआ तो भविष्य में विद्वत्-परिचय की इस कमी को पूरा करने का प्रयत्न किया जायेगा।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१. श्री अगरचन्द नाहटा (जन्म—१९ मार्च १९११, बीकानेर (राजस्थान)। प्राचीन जैन साहित्य—विशेष कर राजस्थान में उपलब्ध साहित्य के खोजी विद्वान्, सम्पादक आदि। —नाहटों की गुवाड़, बीकानेर (राजस्थान)।

२. श्री अमर मुनि जी, जैनागमों के विशिष्ट अध्येता और व्याख्याता। जैन साहित्य और संस्कृति के प्रचार के लिए सन्मति ज्ञानपीठ के संस्थापक। —सन्मति ज्ञानपीठ, लोहामण्डी, आगरा।

३. पं० अमृतलाल शास्त्री, साहित्याचार्य, जैन दर्शनाचार्य, न्यायतीर्थ, (जन्म—७ जुलाई १९१९, बमराना, पो० सैदपुर, जिला झाँसी (उ० प्र०)। —प्राध्यापक जैन दर्शन, संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी।

४. डॉ० आदिनाथ नेमिनाथ उपाध्ये, एम० ए०, डी० लिट्, (जन्म—सन् १९०६ सदलगा, जिला बेलगाँव)। संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश साहित्य के विशिष्ट एवं वरिष्ठ अध्येता, अध्यापक, सम्पादक तथा वैज्ञानिक सम्पादन पद्धति के पथ-निर्माता। —धवला, ८, राजारामपुरी, कोल्हापुर–१।

५. डॉ० कृष्णचन्द्र आचार्य, एम० ए०, पी-एच० डी० (जन्म—२ सितम्बर १९३४) प्राध्यापक संस्कृत विभाग, उत्कल विश्वविद्यालय, वाणी वितान, भुवनेश्वर–४ (उड़ीसा)।

६. पं० के० भुजबली शास्त्री, विद्याभूषण, (जन्म—सन् १८९७) कन्नड़ जैन साहित्य के निष्ठावान् खोजी विद्वान्, सम्पादक और अध्येता। —म्युनिसिपल कालोनी नं० ३७ धारवार (दक्षिण रेलवे)।

७. पं० कैलाशचन्द्र सिद्धान्तशास्त्री (जन्म—कार्तिक शुक्ल १२, वि० सं० १९६०) नहटौर, जिला बिजनौर (उ० प्र०)। जैन वाङ्मय के विशिष्ट अध्येता, अध्यापक, सम्पादक तथा मौलिक रूप में प्रस्तुतकर्ता। —प्राचार्य, श्री स्याद्वाद महाविद्यालय, भदैनी, वाराणसी–१।

८. प्रिन्सिपल जी० के० पाटिल, शोलापुर कालेज, शोलापुर (महाराष्ट्र)।

९. डॉ० जी० ह्वी० तगारे शिक्षा ऑफ़िस, जिला परिषद्, सांगली, (महाराष्ट्र)।

१०. श्री ज्ञान भारिल्ल, एम० ए०, बी० एड० (जन्म—सन् १९२९) ब्यावर, जिला अजमेर, (राजस्थान)। प्रकाशन अनुभाग अधिकारी, शिक्षा विभाग,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

राजस्थान सरकार, बीकानेर। प्राचीन जैन साहित्य के अध्येता तथा आधुनिक शैली-शिल्प में प्रस्तुतकर्ता। —प्रकाशन अनुभाग, शिक्षा विभाग, बीकानेर (राजस्थान)।

११. पं० चैनसुखदास न्यायतीर्थ, प्राचीन जैन साहित्य के विशिष्ट अध्येता, अध्यापक तथा राजस्थान में जैन साहित्य के अध्ययन-अनुसन्धान के दिशा निर्देशक। प्रेरक और पथ-निर्माता। प्राचार्य, दि० जैन संस्कृत कालेज, मनिहारों का रास्ता, जयपुर (राजस्थान)।

१२. मुनि श्री जिनविजय जी, प्राकृत भाषा के वहुश्रुत विद्वान्, अनुसन्धाता और सम्पादक। —द्वारा एल० डी० इन्स्टीटयूट ऑव इण्डोलाजी, अहमदावाद (गुजरात)।

१३. पं० जुगलकिशोर 'मुख़्तार' प्राचीन जैन साहित्य का ऐतिहासिक तथा वैज्ञानिक दृष्टि से परीक्षण और अध्ययन करने की परम्परा के निर्माता। —द्वारा डॉ० श्रीचन्द्र जैन संघल जी० टी० रोड, एटा (उ० प्र०)

१४. प्रिंसिपल जे० डी० धनाल, दहीवाडी, कालेज, दहीवाडी, जिला—सतारा (महाराष्ट्र)

१५. आचार्य श्री तुलसी, जैन आगमों के विशिष्ट अध्येता, सम्पादक और विवेचक जन-जीवन में जैन संस्कृति के प्रचार के लिए अणुव्रत आन्दोलन के प्रवर्तक। आगम साहित्य के सम्पादन-प्रकाशन की योजना में एक विशिष्ट दृष्टि, दृढ़ता और महती आस्था के साथ संलग्न। —द्वारा अणुव्रत सभागार, बम्बई।

१६. प्रो० डी० बी० पठान, एस० जी० एम० कालेज, करड (दक्षिण भारत)।

१७. पं० दलसुख भाई मालवणिया, प्राकृत तथा जैन वाङ्मय के विशिष्ट अध्येता, अध्यापक और सम्पादक। —डायरेक्टर, एल० डी० इंस्टीट्यूट ऑव इण्डोलॉजी, अहमदाबाद-९।

१८. मुनि श्री नथमल जी, (जन्म-वि० सं० १९७७) रमकोर, (राजस्थान)। आचार्य श्री तुलसी की देख-रेख में चल रहे आगम-अनुसन्धान कार्य के सम्पादक—प्राकृत, संस्कृत और हिन्दी के उद्भट विद्वान्, लेखक और कवि।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१९. डॉ० नारायण अनन्त देशपाण्डे, एम० ए० पी-एच० डी० (जन्म—१०-३-१९२०) वाई, सतारा (महाराष्ट्र) अध्यक्ष संस्कृत-अर्धमागधी विभाग, २०२ तुरेल पारवाडी, पोस्ट मलाद, बम्बई-६४ ।

२०. श्री नीरज़ जैन, पुरातत्त्व की शोध-खोज में श्रम और निष्ठापूर्वक संलग्न । —सुषमा प्रेस, सतना (म० प्र०)

२१. श्री पृथ्वीराज जैन एम० ए०, शास्त्री (जन्म—अप्रैल १९१५) पाटली, जिला अमृतसर (पंजाब) संस्कृत तथा जैनधर्म विभाग, श्री आत्मानन्द जैन कालेज, अम्बालाशहर (पंजाब) ।

२२. डॉ० पी० एल० वैद्य, (जन्म—२९ जून १८९१) संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, पालि आदि के विश्रुत विद्वान् । डायरेक्टर, भण्डारकर ओरियण्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट, पूना-४ ।

२३. डॉ० पी० बी० पण्डित, एम० ए०, पी-एच० डी०, अध्यक्ष, भाषाविज्ञान विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली-७ ।

२४. डॉ० पी० एम० उपाध्ये, एम० ए०, पी-एच० डी०—१० स्नेहवर्धिनी, गोरेगाँन ईस्ट, बम्बई-६७ ।

२५. पं० प्रकाशचन्द, भारिल्ल, सम्पादक—सन्मति सन्देश, ५३५ गान्धी नगर, दिल्ली-३२ ।

२६. श्री प्रेम सुमन जैन, एम० ए० (जन्म—१ अगस्त १९४२) सिहुँड़ी, जबलपुर, (म० प्र०) प्राध्यापक, भारतीय संस्कृति का इतिहास विभाग, श्री जैन स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बीकानेर (राजस्थान) ।

२७. पं० परमानन्द शास्त्री, प्राचीन जैन साहित्य के खोजी विद्वान् ।—२१, वीर सेवा मन्दिर, दरियागंज, दिल्ली-६ ।

२८. पं० पन्नालाल जैन साहित्याचार्य (जन्म—५ मार्च १९११) पारगुवाँ, सागर (म० प्र०) । प्राचीन जैन साहित्य के विशिष्ट अध्येता ।—महेश किराना भण्डार, कटरा बाज़ार, सागर (म० प्र०) ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

२९. मुनि श्री पुण्यविजय जी (जन्म—कार्तिक शुक्ल पंचमी वि० सं० १९५२, कपड़वण्डा) जैन आगम साहित्य तथा प्राकृत भाषा के प्रकाण्ड विद्वान्, प्राचीन ग्रन्थों के अनुसन्धाता और सम्पादक। द्वारा एल० डी० इन्स्टीट्यूट ऑफ इण्डोलाजी अहमदाबाद, (गुजरात)।

३०. डॉ० पुरुषोत्तम दास जैन एम०ए० पी०-एच्, डी०, अध्यक्ष संस्कृत विभाग, नेहरू स्ट्रीट, सान्जार रोड, रोहतक (हरियाणा)।

३१. पं. फूलचन्द्र सिद्धान्तशास्त्री, प्राचीन जैन सिद्धान्तग्रन्थों के विशिष्ट एवं वरिष्ठ अध्येता, सम्पादक तथा हिन्दी अनुवाद के साथ प्रस्तुतकर्ता। सन्मति जैन निकेतन, नरिया, वाराणसी-५।

३२. बलभद्र जैन (जन्म कुर्राचिजरपुर, आगरा) निर्भीक पत्रकार। सम्पादक, "दिव्य ध्वनि" मोती कटरा, आगरा।

३३. पं० बालचन्द्र सिद्धान्तशास्त्री (जन्म वि० सं० १९६२) जैन सिद्धान्त के विशिष्ट विद्वान्, सम्पादक और अनुवादक। वीर सेवा मन्दिर, २१ दरियागंज, दिल्ली-६।

३४. पं० बेचरदास दोशी, वैज्ञानिक एवं मौलिक दृष्टि से जैनागमों के विशिष्ट एवं वरिष्ठ अध्येता। अध्यापक, सम्पादक। १२ वी० भारती निवास, सोसायटी, अहमदाबाद।

३५. डॉ० बूलचन्द जैन, १२, लेडी हार्डिंग रोड, नयी दिल्ली।

३६. पं० भँवरलाल न्यायतीर्थ, सम्पादक—वीरवाणी, मनिहारों का रास्ता, जयपुर।

३७. प्रो० एम० व्ही० पटवर्धन, फरगुसन कालेज, पूना, (महाराष्ट्र)

३८. प्रो० एम० एस० रणदिवे, छ० शिवाजी कालेज, सतारा (महाराष्ट्र)

३९. प्रिन्सिपल, एम० वाई० वैद्य, वैद्यवर्धिनी सभ्यकला और काम-कालेज, धुलिया (महाराष्ट्र)।

४०. पं० माणिकचन्द्र न्यायाचार्य (जन्म-माघ शुक्ल ५ वि० सं० १९४३) चावली, जिला आगरा (उ० प्र०), आर्ष परम्परा से जैन वाङ्मय के विशिष्ट अध्येता, अध्यापक एवं सम्पादक। हनुमान गंज, फिरोजाबाद (उ० प्र०)

४१. माणिकचन्द्र जैन न्याय-काव्यतीर्थ (जन्म—८ सितम्बर १९०४) शाहपुर,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जिला सागर (म० प्र०)। जैन साहित्य के निष्ठवान् अध्येता और अध्यापक। प्रध्यापक तथा पुस्तकालयाध्यक्ष गणेश महाविद्यालय, सागर (म० प्र०), २९० मोहन नगर, सागर (म० प्र०)।

४२. श्री मिलापचन्द्र कटारिया (जन्म–वि० सं० १९५९) केकड़ी (अजमेर) जैन साहित्य के अध्येता और दृष्टिसम्पन्न लेखक।—केकड़ी, अजमेर (राज०)

४३. श्री रतनलाल कटारिया (जन्म–वि० सं० १९८६ भाद्रपद शुक्ल ६) केकड़ी, अजमेर–राजस्थान (जैन साहित्य के अध्येता और दृष्टिसम्पन्न लेखक केकड़ी) (अजमेर–राजस्थान)।

४४. डॉ० श्रीमती रत्ना नागेश श्रीमन्, एम० ए०, पी–एच० डी० (जन्म–१५ अप्रैल १९२८, मंगलोर) प्राध्यापिका-संस्कृत–प्राकृत वि०, एम० एस० कालेज, फार विमेन, बंगलोर, पता—११५।५ रोड, कलासिपलयाम न्यू एकसटन, बंगलोर-२

४५. प्रो० आर० ह्वी० दीक्षित लिंगराज कालेज बेलगाम, (महाराष्ट्र)।

४६. पं० राजधरलाल जी, व्याकरणाचार्य, प्राचार्य० दि० जैन गुरुकुल, हस्तिनापुर, (मेरठ)।

४७. मुनि श्री रूपचन्द्र जी (जन्म—वि० सं० १९९६ सरदारशहर, राजस्थान)। आचार्य तुलसी के साथ आगम-अनुसन्धान कार्य में प्रवृत्त।

४८. प्रो० लक्ष्मीचन्द्र जैन, एम० एस-सी० (जन्म—१ जुलाई १९२६) सागर (म० प्र०)। जैन गणित के विशिष्ट अध्येता। अध्यक्ष, गणित विभाग, राजकीय डिग्री कालेज, सिहोर (म० प्र०)।

४९. पं० बंशीधर शास्त्री, एम० ए० एलबियन प्लाई बुड कं० लि०, बजबज (बंगाल)।

५०. डॉ० वसन्त गजानन राह्वरकर, एम० ए०, पी-एच० डी० (जन्म—२५ फ़रवरी १९१९) प्राध्यापक, संस्कृत और प्राकृत भाषा विभाग, पुणें विद्यापीठ, पुणें-७ (महाराष्ट्र)।

५१. प्रिन्सिपल बी० ए० चौगुले, सांगली कालेज, सांगली (महाराष्ट्र)।

५२. डॉ० ही० के० मुलकरनी, एम० ए०, पी-एच० डी० (जन्म-२२ नवम्बर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१९१७) आजरा, जिला कोल्हापुर (महा०)। संस्कृत विभाग–इसमायल युसुफ कालेज जोगेश्वरी, बम्बई–६० ।

५३. प्रिंसिपल व्ही० डब्ल्यू करमवेल्कर, राजाराम कालेज, कोल्हापुर ।

५४. विजयमुनि साहित्यरत्न जैन, आगमों के अध्येता तथा प्राचीन साहित्य को नये रूप में प्रस्तुत करने में संलग्न । सन्मति ज्ञानपीठ, लोहामण्डी, आगरा (उ० प्र०)

५५. प्रो० वैद्य माधव यशवन्त एम० ए० एल-एल० बी० (जन्म—२६ नवम्बर १९२३), अर्धमागधी के अध्येता और प्राध्यापक, प्राचार्य, आर्टस् एण्ड कामर्स कालेज, धुलिया (महाराष्ट्र) ।

५६. पं० शोभाचन्द्र भारिल्ल, न्यायतीर्थ (जन्म—५ दिसम्बर १९०४) खैराना, जिला सागर (म० प्र०), जैन साहित्य के गम्भीर अध्येता, चम्पानगर, ब्यावर (राजस्थान) ।

५७. मुनि श्री श्रीचन्द्र जी (जन्म—सं० १९८७, कलकत्ता) आचार्य तुलसी के साथ आगम-अनुसन्धान कार्य में संलग्न ।

५८. प्रो० एस० ए० सिरगुप्पी एम० ए० (जन्म—२६ जुलाई १९३७) प्राध्यापक, अर्धमागधी विभाग, राजाराम कालेज कोल्हापुर (महाराष्ट्र) ।

५९. श्रीमती सरयूदोशी, एम० ए० (जैन चित्र कला की अध्येत्री) नीला हाउस, कारमाइकेल रोड, बम्बई ।

६०. पं० सुखलाल संघवी (जन्म—८ दिसम्बर १८८०) लीमली (सुरेन्द्र नगर) भारतीय दर्शनों के तुलनात्मक अध्येता और व्याख्याता प्रकाण्ड विद्वान्—करीट कुंज, नौरंगपुरा, अहमदाबाद (गुजरात) ।

६१. ब्र० पण्डिता सुमतिबाई शहा, श्राविका संस्था, सोलापुर-२ ।

६२. पं० सुमेरुचन्द्र दिवाकर न्यायतीर्थ, बी० ए०, एल-एल० बी० (जैन वाङ्मय के आस्थावान् अध्येता) दिवाकर सदन, सिवनी (म० प्र०) ।

६३. आचार्य सुमेर के० जैन, एम० ए०, बी० टी० (जन्म—सन् १९२५ प्राचार्य जैन गुरुकुल, सोलापुर (महाराष्ट्र) । मराठी में जैन कथासाहित्य के प्रस्तुतकर्ता । सम्पादक तथा जैन संस्कृति के प्रचार में आस्थाशील ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

६४. डॉ० एच० सी० भायाणी, एम० ए०, पी-एच० डी० (जन्म—२६ मई १९१७) महोवा (सौराष्ट्र) । अध्यक्ष-भाषा विज्ञान विभाग, गुजरात विश्व-विद्यालय, भाषा-साहित्य भवन, अहमदाबाद-९ ।

६५. डॉ० हीरालाल जैन, एम० ए०, एल-एल० बी०, डी० लिट् (जन्म—सन् १८९९ गागई, जिला नरसिंहपुर, म० प्र०) । संस्कृत, प्राकृत, पाली, अपभ्रंश साहित्य के विशिष्ट एवं वरिष्ठ अध्येता, अध्यापक, सम्पादक तथा उद्धारकर्ता प्राचीन जैन साहित्य के वैज्ञानिक सम्पादन पद्धति के पुरस्कर्ता । —प्रदीप प्रोफेसरर्स कालोनी, गढ़ा रोड, जबलपुर (म० प्र०) ।

६६. पं० हुकुमचन्द जी, न्यायतीर्थ, मालवा प्रान्तिक दि० जैन महासभा, बड़नगर, इन्दौर ।

सागर पार के विद्वान्

(1) Prof. Dr. Klaus Bruhn Seminar für indische Philalogie, 1. Freic Universität Berlin—Dahlem Walter-linse-Strasse-12. *Germany*

(2) Prof. Dr. Vittore Bisani, Milano, Vita Boccacio, 43 Milano, *Italy*

(3) Prof. Dr. L. Aisdorf, University of Hamburg, Hamburg-36, Alasterglacis-3, Hamburg *(W. Germany)*

(4) Prof. E. Frauwallner Vienna XIX/117 Gieverinjer Strasse 16, Vicnna-*Austria*

(5) Prof. Dr. Louis Renou, University of Peris, 2, rue Emile Eaguet, PARIS···XIV, *France*

(6) Prof. OSCAR BOTTO Via Princlpeesa Clotilde, 97 10144 Torino, *Italy*.

(7) Dr. Tucci, Director. East and West, ISMEO, Via Merulana, *Rome*.

(8) Dr. Walter Ward M. A., Ph. D. Deptt. of Anthropology, University of Georgia, Athens, *Georgia*

(9) Prof. Yutak Ojihara. 4/9 Kodan Jutubu, Saga Kyato, Japan

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सागर पार के देशों में जैन अध्ययन

(1) Śāntilāla Śāhā-Shantilal Shah : The traditional chronology of the Jainas and an outline of the political development of India from Ajatasatru to Kaniska. (Teildr.) Wurzburg 1934. 55 S. – Vollst. als : Bonner orientalist. Studien. 9. – Bonn, Phil. Diss. 1934.

(2) Huttemann, Wilhelm Ferdinand : The Jnata Staries in the 6th Anga. Strasburg 1907. 51 S. –Auch im Buchh. – of the canons of the Jaina.

(3) Roth, Gustav : Malli-Jnata : the 8th Section of the 6th Anga. Nayadhammakahao of the Svetam-bara-Jaina canon. (Mschr.) 1952. Getr. Pag. Munchen. Phil. Diss.1952.

(4) Steinthal, P : Specimen of the Nayadhammakaoha. Berlin 1881. 84 S. Leipzig, Phil. Diss. 1882.

(5) Sen, Amulyachandra : A critical Introduction to the Panhavagaranaim, the tenth Anga of the Jaina Canon.

Wurzburg 1936. 67 S.-Hamburg, Phil. Diss. 1935 (1937)

(6) Leumann, Ernst : The Aupapatika Sutra. The first Upanga of Jain with Introduction, text and Glossary. Leipzig 1882. –Leipzig. Phil. Diss. 1882.

(7) Kāmptz, Kurt von : Upon the last fasting in the old Painna in the jain canon.

(8) Kohl, josef Friedrich : The Suryaprajnapti and

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

history of the text of Jambudvjpaprajnapti by specimen. Bonn 1937. XLII, 18 S.–Vollst. als : Bonner orientalist. Studien. 20. –Bonn, 1937. Phil. Diss. 1937.

(9) Schubring, Walther : The Kalpasutra. The old Jain asetic text, translation, glossary etc. Leipzig 1905, 71 S.– Indica, 2–Strasburg, Phil. Diss. 1904.

(10) Hamm, Frank-Richard : Giyatthavihara–6th section of the Mahanisihasutta, text, translation, glossary etc. (Mschr.) 1948. 80 Bl. –Hamburg, Phil Diss. 1948.

(11) Fick, Richard : The Jaina version of the Sagara story. Kiel 1888. XXIII, 29, I S., I Bl. Kiel, Phil. Diss. 1888.

(12) Alsdorf, Ludwig : Harivamsapurana. A portion of the Mahapurana of Puspadanta and Introduction of the study of Apabhramsa, text etc. Hamburg 1936. XII, 515 S.–Alt-u. neuindische Studien. 5. –Berlin, Phil. Hab.Schr. 1935.

(13) Bruhn, Klaus : Silanka's Caupannamahapurisacariya. An Introduction to our knowledge of the Jaina Universal History. Hamburg 1954. IX. 153 S.–Alt.u. neuindische Studien. 8.–Hamburg, Phil. Diss. 1955.

(14) Alsdorf, Ludwig : The Kumarapalapratibodha. An Introduction to our knowledge, Apabhramsa and the story, literature of the Jainas. Hamburg 1928.XII, 227 S. Alt. u. neuindische Studien 2.– Hamburg. Phil. Diss. 1928 (1930).

(15) Jacobi, Hermann (Georg) : Upamitibhavaprapanca A specimen. Bonn 1891. 24 S.—In : Programm zur Grundungsfeier d. Univ. Bonn. 1891.

(16) Mirnow, Nicolaus : The Dharmapariksa—A Study

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

in the literature and history of religions. Leipzig 1903. 56 S. Strasburg, Phil. Diss. 1903.

(17) Denecke, Walter : Digambara-Text, their Language etc. (Mschr.) 1923. 95 S—Auszug : Mschr. 4 Bl.—Hamburg. Phil Diss. 1923 (1925).

(18) Laber, Julius : On the Vajjalaggam (the Prakrit Anthology). Leipzig 1913. 45 S.—Bonn, Phil. Diss. 1913.

(19) Sukthankar, Vishnu Sitaram : The Grammar of Sakatayana. Adhyaya 1 pada 1 with Yaksavarman's Commentary (Cintamani). Leipzig 1921, 90 S.—Berlin, Phil. Diss. 1921.

(20) Laddu, Tukaram : Prolegomena to Trivikramas Prakrit Grammar. Halle a. S. 1912. 46 S.—Halle, Phil. Diss. 1912.

(21) Franke, R. Otto : Hemacandra's Linganucasana with the commentary. Gottingen 1886. XVII, 23, 74 S., 1 Bl.—Gottingen, Phil. Diss. 1886.

(22) Schrader, Friedrich Otto : Upon the Stand of Indian Philosophy of Mahavira and Buddha. Leipzig 1902. X, 68 S.—Strasburg, Phil. Diss. 1902.

(23) Glasenapp, Helmuth von : The Doctrine of Karma according to Karma-granthas. Leipzig 1915. 115 S.—Bonn. Phil. Diss. 1915.

The above information is based on—"Verzeichnis—indienkundlicher Hochschulschriften. Deutschland—Osterreich—Schweiz. von KLAUS LUDWIG JANERT, 1961, OTTO HARRASSOWITZ. WIESBADEN."

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Dr. L. ALSDORF, Hamburg

Jainological studies are carried on in Germany practically in three places only, viz. Hamburg, Berlin, and Bonn. For Hamburg, the following short indications will, I hope, suffice.

My Guru Prof. Schubring has published two more works on Cheda-sūtras, viz.

(1) Studien zum Mahānisīha, Kapitel 1-5. (Together with Jozef Deleu). Alt—und Neuīndische Studien Vol. 10, Hamburg 1963.

(2) Drei Chedasūtras des Jaina-Kanons : Āyāradasāo, Vavahāra, Nisīha, Mit einem Beitrag von Collette Caillat. Same Series vol. 11, Hamburg 1966.

As a kind of supplement to No. (1) may be regarded Schubring's contribution to the Mèlanges d' Indianisme à la mèmoire de Louis Renou (Paris 1968) : Zwei Reden Mahāvīras (Translations from the Mahānisīha).

I have myself delivered, in 1964, Lectures on Jain Studies : present conditions and future tasks, at the Collège de France in Paris. They have been published in French : "Les ètudes Jaina, ètat prèsent et tâches futures. Paris 1965.

Besides, I h've published a number of articles dealing with the Uttarādhyayana. The latest is entitled : ' The Aryā stanzas of the Uttarajjhāyā." I am sending you a copy of it by surface mail; on the first page you will find the titles of all the preceding articles.

My article "Itthiparinnā A chapter of Jain monastic

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

poetry, edited as a contribution to Indian prosody", appeared in 1958 in vol. II of the Indo-Iranian Journal. It has recently been translated into Gujarati by Dr. A. N. Jani and was published in the Golden Jubilee Vol. by Shri Mahavira Jaina Vidyalāya, Bombay.

At present, I have taken up the study of the Uttarajjhayaṇa Nijjutti.

Dr. (Mrs.) A. Mette is preparing a critical translation and study of the Piṇḍa section of the Oghanijjutti which will be published in the near future.

Two students of mine are preparing their Doctorate theses. One is dealing with the Piṇḍa chapter of the Mūlācāra as compared with the corresponding Śvetāmbar texts; the other with another Digambar text, the Bhagvatī Mūlārādhanā.

I hope this will give you an idea of the work being done here in Hamburg.

Wishing your work the best of success and hoping that you will soon be able to publish it.

■ ■

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पाठकों को विश्व-साहित्य को नयी दिशाओं
विचारों से परिचित कराने की ओर नि
त्नशील है। भारतीय संस्कृति के संश्लिष्ट
तिपादन, विचारों के नये आयाम, दृश्य की म
ष्ट, अभिव्यक्ति की सरलता और विविधता
इस मासिक ने महत्त्वपूर्ण तथा सार्थक प्रय
योग किये हैं। इसके विशेषांकों ने हिन्
ावधिक पत्रकारिता के क्षेत्र में नयी सूझ-
परिचय नहीं दिया, उपलब्धि के नये मानद
ापित किये हैं।

वार्षिक मूल्य १५.०० : एक प्रति

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi